इग्नू
जन-जन का
विश्वविद्यालय

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

MHD - 11
हिन्दी कहानी

हिन्दी कहानी

इग्नू
जन जन का
विश्वविद्यालय

इन्दिरा गांधी
राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

MHD-11
हिंदी कहानी

खंड

3

इकाई 9

बहिर्गमन : विश्लेषण और मूल्यांकन 5

इकाई 10

गौरैया : विश्लेषण और मूल्यांकन 24

इकाई 11

ड्राइंग रूम : विश्लेषण और मूल्यांकन 37

इकाई 12

क्लॉड ईथरली : विश्लेषण और मूल्यांकन 53

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

प्रो. नित्यानंद तिवारी
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली

प्रो. राजेन्द्र कुमार
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी
हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. ए. अरविन्दाक्षन
पूर्व समकुलपति
महात्मा गाँधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय
वर्धा

प्रो. हरिमोहन शर्मा
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. गोपेश्वर सिंह
प्रोफेसर एवं पूर्व अध्यक्ष
हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

संकाय सदस्य

प्रो. जवरीमल्ल पारख
प्रो. सत्यकाम
प्रो. शत्रुघ्न कुमार
डॉ. स्मिता चतुर्वेदी
डॉ. जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव
(पाठ्यक्रम संयोजक)

पाठ्यक्रम संयोजक

डॉ. जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, हिन्दी संकाय
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

खंड संयोजन, संशोधन एवं संपादन

डॉ. जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, हिन्दी संकाय
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

पाठ लेखक	इकाई सं.
डॉ. अर्चना वर्मा अवकाश प्राप्त एसोसिएट प्रोफेसर हिन्दी विभाग, मिरांडा हाउस, दिल्ली	9
प्रो. पुष्पपाल सिंह अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला	10
प्रो. देवशंकर नवीन भारतीय भाषा केन्द्र, जे.एन.यू., नई दिल्ली	11
डॉ. एन. एम. सण्णी एसोसिएट प्रोफेसर हिन्दी विभाग, मालावार क्रिस्चियन कालेज, कालीकट	12

विशेष सहयोग : डॉ. नमिता सत्येन
डॉ. वावळकर शिवदत्ता बाजीराव
सुश्री भावना सरोहा

सचिवालयिक सहयोग : सुश्री हेमलता

सामग्री निर्माण

श्री सी. एन. पाण्डेय
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन)

मई, 2016

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2016

ISBN-978-93-86100-40-5

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कार्य का कोई भी अंश इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों के विषय में और अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली-110068 से प्राप्त की जा सकती है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से प्रो. सुनैना कुमार, निदेशक, मानविकी विद्यापीठ द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

Paper Used : "Agro based Environment Friendly"

लेजर टाइप सेटिंग : एच. डी. कंम्यूटर क्रॉफ्ट, डब्लु जैड 36ए, लाजवंती गार्डन, नई दिल्ली 110046

मुद्रक : अमेटी ऑफसेट प्रिटंर्स, 12/38, साइट - IV, साहिबाबाद, इन्डस्ट्रियल एरिया, गाजियाबाद,(उ,प्र,)

खण्ड-3 परिचय

यह कहानी संबंधी माड्यूलर के तीसरे पाठ्यक्रम 'हिन्दी कहानी' का तीसरा खण्ड है। इस खण्ड में कुल चार इकाइयाँ हैं जो इस प्रकार हैं–

इकाई - 9 'बहिर्गमन' : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई - 10 'गौरैया' : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई - 11 'ड्राइंगरूम' : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई - 12 'क्लॉड ईथरली' : विश्लेषण और मूल्यांकन

इस खण्ड में बहिर्गमन (ज्ञानरंजन), गौरैया (रवीन्द्र कालिया), ड्राइंगरूम (राजकमल चौधरी), क्लॉड ईथरली (मुक्तिबोध) जैसी अत्यंत महत्वपूर्ण कहानियों का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इस खण्ड को पढ़ने के पश्चात आप ज्ञानरंजन, रवीन्द्र कालिया, राजकमल चौधरी और मुक्तिबोध जैसे महत्वपूर्ण कहानीकारों की कहानी कला से भी परिचित होंगे/होंगी।

हमें विश्वास है, इस खण्ड के अध्ययन के पश्चात आप हिन्दी कहानी के विस्तृत परिसर से परिचित हो सकेंगे/सकेंगी। इस खण्ड में शामिल कहानियाँ इन लेखकों की सर्वकालिक महान कहानियाँ हैं। 'क्लॉड ईथरली' कहानी पढ़ते हुए आप एक बड़े कवि द्वारा लिखी गई कहानी की विशेषताओं से परिचित होंगे/होंगी। इसी प्रकार इस खण्ड में शामिल अन्य कहानियों को पढ़ते हुए मन और विवेक पर उनका गहरा असर पड़ता है।

इस खण्ड को पढ़ते हुए आप इसमें शामिल कहानीकारों के रचना संसार का भी संक्षिप्त परिचय पा सकेंगी/सकेंगे। इन कहानियों के विश्लेषण से गुजरते हुए आप देखेंगे/देखेंगी कि किसी कहानी की श्रेष्ठता के निर्धारण में उसकी कथावस्तु के साथ-साथ उसके रूप पक्ष का भी बड़ा योगदान होता है। इस पाठ्यक्रम के चौथे खण्ड में भी आप चार कहानियों का अध्ययन करेंगी/करेंगे।

शुभकामनाओं सहित।

इकाई 9 बहिर्गमन : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 नयी कहानी : दूसरा दौर

9.3 ज्ञानरंजन : परिचय और पृष्ठभूमि

9.4 बहिर्गमन : पाठ-बोध और प्रक्रिया

9.5 ज्ञानरंजन की कथा-भाषा

9.6 सारांश

9.7 अभ्यास

9.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप

- हिन्दी कहानी की साठोत्तरी पीढ़ी की रचना और प्रवृत्तियों के विषय में जान सकेंगी/सकेंगे।
- इस पीढ़ी के प्रमुख कथाकार ज्ञानरंजन के व्यक्तित्व और कृतित्व का परिचय पा सकेंगी/सकेंगे
- ज्ञानरंजन की एक विशिष्ट कहानी 'बहिर्गमन' की अन्तर्वस्तु और अभिव्यक्ति कौशल के बारे में जानेंगी/जानेंगे।

9.1 प्रस्तावना

ज्ञानरंजन, दूधनाथ सिंह, रवीन्द्र कालिया, गिरिराज किशोर, से.रा. यात्री, काशीनाथ सिंह, मुद्राराक्षस, विजयमोहन सिंह, कामतानाथ, रमेश उपाध्याय, गोबिन्द मिश्र, गंगा प्रसाद विमल, महेन्द्र भल्ला, मनहर चौहान, पानू खोलिया आदि नयी कहानी के दूसरे दौर अथवा साठोत्तरी पीढ़ी के प्रमुख रचनाकार हैं।

किसी पीढी के रचनात्मक उत्कर्ष की अवधि एक डेढ़ दशक या दस पन्द्रह वर्ष मानी जा सकती है। इस अवधि के उत्तर काल में अगली पीढ़ी के नाम या नये रचनाकार उभरने लगते हैं और अगले दस पन्द्रह वर्ष उनके विकास और उत्कर्ष के हुआ करते हैं। सामान्यतः पीढ़ी के इसी परिवर्तन में कभी यह पिछले का ही अलग विकास और विस्तार होता है तो कभी उसका प्रतिरोध, अस्वीकार और उच्छेदन। प्रक्रिया हमेशा वही होती है - कुछ-कुछ पुराने लक्षणों का कायम रहना और कुछ कुछ नये विचारों का आगम होना। जब नये का आगम तीव्र और प्रबल हो उठता है तो प्रतिरोध, अस्वीकार, उच्छेदन की आंधी में युगान्तर घटित होता है अन्यथा विकास और विस्तार के बहाव में पुराने का मँजाव और परिष्कार चलता रहता है। एक दृष्टि से दोनो प्रक्रियाएँ द्वन्द्वात्मक हैं, कभी वे प्राचीन और आधुनिक की टकराहट में पीढ़ियों के द्वन्द्व की तरह अभिव्यक्त होती है तो कभी आधुनिक के ही क्षेत्र में दो विचारों या विचारधाराओं के परस्पर प्रतिरोध में प्रकट होती है।

नयी कहानी के पहले चरण में परिवर्तन और युगान्तर का स्वर प्रबल होकर सुनाई दिया था। उसके बाद वे परिवर्तनों को पीढ़ीगत अन्तर की तरह या प्राञ्जलता, परिष्कार, तीव्रता, प्रतिरोध आदि की तरह देखा समझा जा सकता है, युगान्तर जैसा कुछ घटित होता दिखाई नहीं देता। समान्तर कहानी, सचेतन कहानी, अकहानी जैसे कुछ आन्दोलन खड़े भी हुए लेकिन कोशिश ही बन कर रह गये, नयी कहानी के सिद्धान्तकारों की तुलना में उनके सिद्धान्त पर्याप्त भिन्न या प्रबल साबित नहीं हो सके। इस दौर में ग्रामीण जीवन के कथाकारों की गिनती क्रमशः घटती चली जाती है।

पिछली पीढ़ी के मध्यवर्ग में वे भी लेखक थे जिनका नाता अभी गाँव के साथ गहरा था यद्यपि वे स्वयं शहरी हो चुके थे। अगली पीढ़ी का लेखन ज्यादा एकाग्र भाव से शहरी होता दिखाई देता है।

भारतीय अर्थव्यवस्था के स्वरूप में बुनियादी बलाघात बदल जाने से जीवन का नक्शा भी बदल गया था। कृषि-आधारित अर्थव्यवस्था को औद्योगीकरण की ओर उन्मुख करते हुए आधुनीकरण की प्रक्रिया को तीव्रतर किया गया। अर्थव्यवस्था में बलाघात से इस अन्तरण से खेती आजीविका के अर्जन और व्यवसाय के रूप में अपर्याप्त और असन्तोषजनक रह जाती है। किसान को यदि पूर्णतः नहीं तो अंशतः मजदूरी पर निर्भर करना ही पड़ता है। इस तरह शहर-गाँव के बीच शोषण का स्थापित सम्बन्ध तीव्रतर और प्रबल होता है और प्रायः किसान का मजदूर में बदलना एक मजबूरी हो जाती है। आज़ादी के पिछले पचास साठ वर्षों में हम इस प्रक्रिया को क्रमशः अनेकायामी और तीव्रतर होता हुआ देखते आए हैं। औपनिवेशिक सरकार द्वारा अपने हक में स्थापित औद्योगीकरण भारत के विकास के लिये अधूरा और विकृत था, आजादी के बाद भी बरसों तक उन्ही नीतियों का अनुगमन होता रहा। आधुनीकीकरण की योजना का अर्थ औद्योगीकरण के अनुकूल बिजली-पानी-सड़क के आधारभूत ढाँचे का विकास, शहरीकरण की प्रक्रिया में तेजी और शिक्षा का व्यापक प्रसार है। जीवन पद्धति में इसका अनुवाद स्थानान्तरण और विस्थापन, संयुक्त परिवारों का विघटन, परिवार-जात-बिरादरी के नियंत्रण का क्षय, आत्मकेन्द्रित निरंकुश अहंकार व अकेलेपन का संत्रास से शुरू करके आज के सन्दर्भ में व्यापारिक कॉर्पोरेट जगत का उद्भव, संचार-माध्यमों का वर्चस्व, विज्ञापन की संस्कृति और उपभोक्तावादी मूल्यों की विजय, निरर्थकता और अवास्तविकता का बोध, भ्रष्टाचार का बोलबाला और अपराध का महिमामण्डन आदि में दिखाई देता है।

तब, नयी कहानी के पहले दौर में, शहरी जीवन और संवेदना का यह रूप अनुभव के स्तर पर परम्परा के लिये अपरिचित, एक सर्वथा नये अध्याय की शुरुआत थी। प्रेमचंद, अमृतलाल नागर, भगवतीचरण वर्मा, अज्ञेय, जैनेन्द्र, यशपाल आदि ने भी शहरी जीवन को अपनी रचनाओं में व्यक्त किया था लेकिन उनके अनुभव को 'शहरी संवेदना' की तरह परिभाषित करने की कोई जरूरत नहीं पड़ी थी। इस अनुभव का सम्बन्ध विकास और विस्थापन की नयी परियोजनाओं से जुड़ा था। शहर अब केवल रहने की एक जगह नहीं, सोचने और महसूस करने का एक नया ढंग भी था। इस नयी संवेदना के कारण भी कहानी को 'नयी कहानी' मनमाने का एक औचित्य था।

नयी कहानी के पहले चरण में परिवर्तन और युगान्तर का स्वर प्रबल होकर सुनाई दिया था। उसके बाद के परिवर्तनों को पीढ़ीगत अन्तर की तरह प्राञ्जलता, परिष्कार, तीव्रता, प्रतिरोध आदि की तरह देखा समझा जा सकता है। 1990 के आर्थिक उदारीकरण, निजीकरण, वैश्वीकरण, मण्डल कमीशन और बाबरी मस्जिद ध्वंस के प्रभाव के पहले कथा साहित्य में युगान्तर जैसा कुछ घटित होता दिखाई नहीं देता। समान्तर कहानी, सचेतन कहानी, अकहानी जैसे कुछ आन्दोलन खड़े भी हुए लेकिन कोशिश ही बन कर रह गये,

नयी कहानी के सिद्धान्तकारों की तुलना में पर्याप्त भिन्न या प्रबल साबित नहीं हो सके। दूसरे दौर की नयी कहानी को इस पृष्ठभूमि के साथ देखते हुए ही तय किया जा सकता है कि उसमें किस हद तक अपना समय और समाज उपस्थित रहा है और कितना कुछ ऐसा ही जो छूट गया है।

9.2 नयी कहानी : दूसरा दौर

नयी कहानी के पहले दौर में गाँव की कहानियाँ लिखने वाले अनेक रचनाकार मौजूद थे। लेकिन बाद के दशकों में कहानी उत्तरोत्तर शहरोन्मुख होती चली गयी और अपने दूसरे दौर में अन्ततः शहरी संवेदना में निहित मोहभंग, नकार और संत्रास की उस परीक्षा तक पहुँची जिसके आगे जाना संभव नहीं था, केवल मूल्य के पुनः आविष्कार और अर्जन, सम्पुष्टि और सत्यापन की ओर लौटा जा सकता था या फिर लेखन से उपराम हुआ जा सकता था। यह केवल सांयोगिक नहीं माना जा सकता कि ज्ञानरंजन, दूधनाथ सिंह, रवीन्द्र कालिया, गिरिराज किशोर, से.रा.यात्री, काशीनाथ सिंह, मुद्राराक्षस, विजयमोहन सिंह, कामतानाथ, रमेश उपाध्याय, गोविन्द मिश्र, गंगा प्रसाद विमल, महेन्द्र भल्ला, मनहर चौहान, पानू खोलिया आदि साठोत्तरी पीढी के सभी प्रमुख रचनाकारों का महत्वपूर्ण लेखन या तो इस विषयवस्तु के चरम पर पहुँच कर समाप्त हो गया या फिर गाँधीवाद, समाजवाद या साम्यवाद जैसी किसी न किसी किस्म की प्रतिबद्धता में पर्यवसित होकर जारी तो रहा लेकिन अपनी धार खो बैठा। पिछली पीढ़ी के लेखक भी इस दौरान लेखन में सक्रिय रहे और कहा जा सकता है कि नयी पीढ़ी की अपेक्षा अधिक गंभीर और सार्थक रूप से सक्रिय रहे।

आज़ाद हिन्दुस्तान के इतिहास में साठ से पचहत्तर तक के पन्द्रह वर्षों की अवधि में कुछ ऐतिहासिक रूप से महत्वपूर्ण और निर्णायक घटनाएँ हुई। 1962 में चीन का हमला हुआ, 1965 और 1971 में पाकिस्तान के साथ दो युद्ध हुए। बांगला देश का निर्माण दूसरे युद्ध का नतीजा था। 1975 से 1977 तक के समय में आपातकाल लागू रहा। चीन का हमला न केवल पंचशील के सिद्धान्तों का हनन बल्कि राजनैतिक मैत्री करार के विरूद्ध बड़ा विश्वासघात था जिससे नेहरू कभी उबर नहीं सके। 1964 में नेहरू की मृत्यु के बाद 1967 में अनेक प्रान्तों में संविद बनीं जो कांग्रेस से मोहभंग के अलावा इस अहसास का कारण भी थीं कि वास्तविक विकल्प कोई है नहीं और सत्ता सबको अपने ढाँचे में ढाल ही लेती है।

युवा पीढ़ी को विशेषतः अपने प्रभाव की जद में लेने वाली घटना विश्वव्यापी छात्र आन्दोलन था जो फ्रान्स के सॉरबोन विश्वविद्यालय से शुरू होकर दुनिया भर में फैल गया। विश्वयुद्धोपरान्त संसार में आधुनिकता के नकारात्मक पक्षों और बीसवीं सदी के अभिशापों की चर्चा, चिन्ता की जा रही थी। वैकल्पिक मूल्यों और जीवन पद्धति की तलाश में यूरोप के युवा समुदाय के हिप्पी, फ्लावर चिल्ड्रेन, बीटनिक्स आदि आन्दोलनों की सदस्य टोलियाँ भारत की ओर रुख कर रही थीं। अमरीकी कवि और यात्री एलेन गिन्सबर्ग के भारत प्रवास में अनेक भारतीय लेखक उनके सम्पर्क में आए और प्रभावित हुए। उनकी भारत यात्रा का अपना उद्देश्य 'सत्य' और 'पवित्र' की तलाश था, लेकिन वस्तुतः हर देश में ये अपनी अपनी व्यवस्था से असहमति और विरोध के विविध स्वर थे। कही वे व्यवस्था के दायरों के बाहर निकल कर, कहीं उग्र और हिंसक रूप भी अख्तियार कर के अभिव्यक्त हो रहे थे। भारत का अपना छात्र आन्दोलन नक्सलवाद बन कर फूट रहा था। इस अवधि में इन सरोकारों की ज्यादा गहरी अभिव्यक्ति कविता में दिखाई दी। कहानी तक आने में इनको जरा देर लगी।

हिन्दी कहानी में इन सारी घटनाओं का मिला-जुला असर ऐसे विषयों और वस्तुओं के चुनाव में दिखाई देता है जिनमें नकार प्रमुख है। उस दौर के बीत जाने के बाद आज पीछे मुड़कर देखते हुए प्रतीत होता है कि यह नकार समाज की व्यवस्था और घर-बार के तन्त्र में समाहित होने के पहले, संभवतः बेरोजगारी के दौरान का युवा आक्रोश है जो किसी बड़े मकसद के अभाव में असन्तोष के छोटे छोटे कारण खोजता रहता है और परम्परा-विहित तथा व्यवस्था-अनुमोदित हर वस्तु के प्रति एक खीझ, चिड़चिड़ाहट, अस्वीकृति, बेचारगी या आक्रामकता में अभिव्यक्त होता है। तब, उस समय के तात्कालिक सरोकार में वह मनःस्थिति न केवल मूल्य बल्कि जीवन मात्र के निरर्थक और निर्मूल्य हो उठने की, जिन्दा रहने का कारण खो देने की बेचैनी और हताशा की संगीन आत्म-हन्ता अनुभूति थी जिसमें सार्थकता का उद्यम भी मनबहलाव, बहाना या ढकोसला लगता है। यह मकसद, आस्था और लगाव खो बैठे, अपनी दुनिया के लिये 'आउटसाइडर', 'ड्रॉप-आउट' यानी अजनबी और बाहरी हो उठे लोगों की पीढ़ी थी। उसे अपने लिये खुद अपने मूल्य, अर्थ और मकसद खोजने थे क्योंकि केवल इसी तरह उन्हें सत्यापित करके वास्तविक और यथार्थ बनाया जा सकता था।

नयी कहानी के इस दूसरे दौर को किसी हद तक पहले दौर का ही विस्तार कहा जा सकता है जिसमें नयी पीढ़ी अनास्था और नकार के स्वर को तीव्रतर करती सुनाई देती है लेकिन इसके पीछे अग्रज पीढ़ी के जैसा कोई सुचिन्तित वैचारिक आधार नजर नहीं आता। पिछली पीढ़ी और इस नयी पीढ़ी में आयु का अन्तर कुल दस-बारह-पन्द्रह वर्ष का रहा होगा। वे लोग अगर स्वाधीनता प्राप्ति के समय अठारह-बीस-बाइस-पच्चीस वर्ष के रहे होंगे तो ये लोग आठ-दस-बारह वर्ष के। अवधि का इतना सा अन्तर भी निर्णायक कहा जा सकता है। स्वाधीनता की घटना से दूर जन्म लेती हुई पीढ़ियाँ उत्तरोत्तर उन मूल्यों से भी दूर होती गयीं जिन्होंने स्वाधीनता संघर्ष के दौरान जीवन को लक्ष्य और उद्देश्य प्रदान किया था। पिछली पीढी स्वाधीनता प्राप्ति के समय की रचनारत युवा पीढ़ी थी। उसके सामने नयी निर्माण/विकास नीतियों के तहत या तो एक नष्ट होते हुए समय, समाज और संस्कृति को बचा रखने का मोह या नये आते हुए परिवर्तनों को दर्ज करने की इच्छा (जैसे- फणीश्वरनाथ रेणु) या गहरी जड़ें जमाए बैठे पारिवारिक-सामाजिक सम्बन्धों के मिथको-भूमिकाओं से लोहा लेने का पराक्रम या फिर नगरीकरण की प्रक्रिया में विस्थापन और स्थानान्तरण के परिणामस्वरूप अजनबीपन, अकेलेपन, संत्रास को रूप देने की कोशिश अपने आप में एक रचनात्मक उद्देश्य बन बैठे थे। नयी कहानी के दूसरे दौर की यह पीढ़ी स्वाधीन भारत की ऐसी पहली पीढ़ी कही जा सकती है जिसके सामने से अतीत पीढ़ियों के मकसद हट चुके हैं, सनातन की संभावनाएँ समाप्त हो चुकी हैं और कोई नये स्थानापन्न उद्देश्य अभी तक उपस्थित नहीं हुए हैं। यह एक विश्वव्यापी शून्य है जिसका कारण पश्चिम में विश्वयुद्ध के समय की हिंसा और भारत में स्वाधीनता और नेहरुयुगीन स्वप्नदर्शिता से मोहभंग है। सन 1965 के आस-पास पहुँचते हुए बीते पन्द्रह वर्षों में यह सवाल पूछने और मोहभंग से गुजरने लायक गुंजाइश पैदा हो चुकी है कि आजादी क्या लाई?

नकार के इस परिदृश्य में ज्ञानरंजन की उपस्थिति विशिष्ट है।

9.3 ज्ञानरंजन : परिचय और पृष्ठभूमि

ज्ञानरंजन का जन्म 21 नवम्बर 1936 में अकोला, महाराष्ट्र में हुआ। साहित्य और सांस्कृतिक सक्रियता पारिवारिक परम्परा से मिली। वे हिन्दी की बहुप्रतिष्ठित पत्रिका

'पहल' के संपादक तथा मध्य-प्रदेश के प्रगतिशील लेखक संघ के अध्यक्ष रहे हैं। इसके अतिरिक्त वे साहित्य अकादमी, नेशनल बुक ट्रस्ट व अन्य अनेक राष्ट्रीय संस्थाओं से सम्बद्ध रह चुके हैं।

रचना का आरंभ उन्होंने कविता से किया था। कुल मिला कर छः कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। उनकी कहानियों का अनुवाद अनेक भाषाओं में हो चुका है जिनमें भारतीय भाषाओं के अलावा अंग्रेजी, जर्मन, जापानी, रूसी और पोल भाषाएँ शामिल हैं। सान फ्रान्सिस्को, हायडलबर्ग, लंदन, लेनिनग्राद और पूर्वी यूरोप के अनेक विश्वविद्यालयों में उनकी कहानियाँ पाठ्यक्रमों में निर्धारित हैं। पेन्विन, लंदन के भारतीय साहित्य संचयन में उनकी कहानी का चयन हुआ। एन.सी.आर.टी, नेशनल बुक ट्रस्ट और साहित्य अकादमी द्वारा उनकी कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं।

उनकी कहानियाँ संख्या में बहुत अधिक नहीं हैं लेकिन उपरोक्त सूचनाओं से स्पष्ट है कि कहानी जगत पर उनका व्यापक और गहरा प्रभाव पड़ा। कथा के गद्य में उन्होंने तद्भव और देशज को प्राज्जलता की उस हद तक पहुँचाया जहाँ अभिव्यक्ति अपने आप में सम्पूर्ण सी ज्ञात होती है। अनुभूति और अभिव्यक्ति का समतोल उनके गद्य को यथार्थ की ठोस सीमाओं में रहते हुए ही काव्यात्मक बनाता है। इस काव्यात्मकता का सम्बन्ध मनःस्थितियों को हवाई हुए बिना पूरी तरह से भाषा में संक्रमित कर देने की क्षमता से है। लेकिन उनकी उपलब्धि केवल भाषा की इस सँवार तक सीमित नहीं है। वह कहानी की विधा की पुनःपरिभाषा का काम आगे बढ़ाती है। ये आदि-मध्य-अवसान वाले परिचित विकासक्रम या आरंभ-प्रयत्न-प्राप्त्याशा-नियताप्ति-फलागम की कार्यावस्थाओं या कथानक-पात्र-चरित्र चित्रण-देशकाल-उद्देश्य वाले तत्वों की कहानियाँ नहीं। अगर आप उनके निहितार्थों का बारीकी से अनुगमन करते हुए पढ़ने से चूक जाएँ तो कई बार अपने को इस असमंजस में भी पा सकते हैं कि कहानी पता नहीं कहना क्या चाहती है। कई आलोचकों ने अपनी समीक्षा में इस असमंजस को अभिव्यक्त भी किया है।

इन कहानियों में प्रायः एक युवा या फिर एक युवा होते हुए किशोर का आत्मवाची बयान है जिसमें परिस्थितियों और मनःस्थितियों के निरीक्षण और आत्मालोचन से वृत्तान्त रचा गया है। इनमें घटनाक्रम नहीं, निरीक्षण और आत्मालोचन या कहें कि संवेदना और दृष्टि, महसूस करने का ढंग प्रमुख है। वृत्तान्तों में जीवन की दैनिक चर्या में से उठाए गये बेहद सहज, सामान्य ब्यौरे एक विशेष संयोजन में गूँथे गये हैं। उनके संयोजन से रोज़मर्रा की जिन्दगी में आते हुए बदलावों को दर्ज किया गया है। इन वृत्तान्तों की वस्तु में आप स्त्री, घर, पिछली पीढ़ी, दाम्पत्य, मैत्री जैसे विषयों और सम्बन्धों को देखती हुई एक उचाट युवा दृष्टि से मुलाकात करते हैं जो किसी भी दृश्य में रमती नहीं, मूल्यांकन करती चलती है। शुरुआती कहानियों में प्रायः यह युवा एक परम्परागत, रूढ़िग्रस्त शायद निम्नमध्यवर्गीय वातावरण और पुराणपंथी संस्कारों की पृष्ठभूमि से निकल कर अक्सर अपने से भिन्न, प्रायः उच्चतर मध्यवर्गीय जीवन पद्धति के लोगों को देखता और जानता पहचानता है। एक हद तक इसे वर्गोल्लंघन के दोराहे पर अपनी राह के चुनाव की प्रक्रिया की तरह देखा जा सकता है। इस तरह वह दो दुनियाओं के बीच फँसा और दोनों ही संसारों से एक फासले पर खड़ा, एक उलझा हुआ आदमी है।

शुरुआती कहानियों में बड़ी संख्या 'स्त्री' को देखने वाली कहानियों की है; माँ, बहन, पत्नी के अलावा भी इन 'स्त्रियों' को देखने वाली जिनके साथ किस्सागो पात्र किसी रिश्ते में बँधा नहीं है। वे प्रायः संभावित प्रेमिकाएँ और कभी कभी वस्तुतः प्रेमिका भी हैं। इस स्त्री के विषय में किस्सागों के आयुसुलभ कौतुहल, कल्पनाशील और दिलचस्पी के अलावा ऐसे भी ब्यौरे आते हैं जो कहीं कहीं अपने संसार की तुलना में दूसरे संसार की स्त्री के

व्यवहार, परिवार में उसकी जगह और अधिकार में आते हुए खुलेपन सहजता और आत्मीयता या फिर उसके ढोंग को दर्ज करते हैं। 'क्षणजीवी', 'दिवास्वप्नी', 'खलनायिका और बारूद के फूल', 'सीमाएँ', 'दिलचस्पी', 'छलांग' आदि इस मूड की कहानियाँ हैं। यह कौतूहल और दिलचस्पी कैशोर्य और आरंभिक यौवन पर हावी मानसिकता है। छायावाद तक इस अनुभूति में एक हवाई स्वप्निल अतीन्द्रियता थी, नयी कहानी ने इसे नयी स्त्री के विकसित होते व्यक्तित्व की टक्कर में अहंकारों की मुठभेड़ को एक युद्धोचित वीरता और गंभीरता दी थी। उदाहरण के लिए राजेन्द्र यादव की 'टूटना' और मोहन राकेश की 'एक और जिन्दगी' जैसी कहानियाँ देखी जा सकती हैं। मनोरंजन और उनकी पीढ़ी के वृत्तान्तों में यह नयी स्त्री उतनी दुर्लभ चीज नहीं रह गयी है। शिक्षा की सुलभता और प्रसार ने 'नयी स्त्री' को अनिवार्यतः 'व्यक्तित्व संपन्न स्त्री' का पर्याय भी नही रहने दिया है, और स्कूल-कॉलेज या दोस्तों के घर मे सम्पर्क के अवसरों की सुलभता ने उसे जीवनचर्या का सामान्य हिस्सा बना दिया है। खुलेपन के खोल में पुराने संस्कारों की जकड़न अभी बाकी है। इन वृत्तान्तों के बयान में एक खिल्ली उड़ाता सा, मजा लेता, चिढ़ाता हुआ मखौल का स्वर सुनाई देता है जो चुहल और शरारत से तो बाज नहीं आता लेकिन, व्यंग्य और प्रहार के ध्वंस तक भी नहीं जाता। प्रेम और दाम्पत्य केन्द्रीय रूप से इस उपहास के स्थायी निशाने पर हैं। कारण संभवतः यह कि नयी कहानी के पहले दौर में ही परिवार की बजाय युगल को समाज की लघुतम इकाई मान लिया गया था। संयुक्त परिवारों का विघटन और इकाई परिवारों का उदय इसके पीछे का सामाजिक तथ्य था। जनम जन्मान्तर का सम्बन्ध और आत्मा का बन्धन जैसी धारणाएँ हास्यास्पद हो चुकी थीं। लक्ष्यहीन जीवन की निरर्थकता और शून्य की भरपाई करने लायक घनत्व प्रेम और दाम्पत्य जैसे रिश्तों में शेष नहीं था। इसका एक सकारात्मक पक्ष रिश्तों में एक भारहीन उत्फुल्लता, सहजता और मैत्री का आगम है। 'हास्यरस', 'दाम्पत्य' और 'रचना-प्रक्रिया' जैसी कहानियाँ इसका प्रमाण हैं।

ज्ञानरंजन की परवर्ती कहानियों में एक अगम्भीर आवाज में गंभीर सरोकारों की अन्तर्धारा है। 'पिता' उनकी एक विशिष्ट कहानी है। नयी कहानी से पहले दौर से ही पिछली पीढ़ी के साथ टक्कर या परिवार के मुखिया के अप्रासंगिक होते जाने की वस्तु को लेकर अधिसंख्य कहानियाँ लिखी गयी थीं। पिछली पीढ़ी को सामन्ती व्यवस्था, वर्चस्व, गतिरोध, प्रतिगामिता का प्रतीक बना कर चित्रित किया गया था। ज्ञानरंजन की 'पिता' इसके विपरीत खीझ और झुँझलाहट के बावजूद गहरी ममता और सम्मान के साथ लिखी गयी कहानी है। कहानी उस पिता, पीढ़ी की है जो सादगी, आत्मनिर्भरता, मितव्ययिता, सन्तोष और स्वाभिमान के मूल्यों पर अटूट विश्वास और अडिग आचरण के जरिये अपनी बुलन्दी प्रमाणित कर चुकी है जिसके सामने अपने को कायम कर पाना पुत्रों के लिये एक चुनौती है- ''उसे लगा पिता एक बुलंद भीमकाय दरवाजे की तरह खड़े हैं, जिससे टकरा टकरा कर हम सब निहायत पिद्दी और दयनीय होते जा रहे हैं।'' बिना किसी नाटकीय मुठभेड़ या तकरार के, पिता केवल उन सुख-सुविधाओं को भोगने से इंकार कर देते हैं जो उनके लायक बेटे उनको देने के इच्छुक है। पिता के लिये यह केवल आर्थिक सामर्थ्य का मामला नहीं, जीवनमूल्यों का पर्याय है, लेकिन बेटे के लिये इसका मतलब पिता के समक्ष खुद का छोटा पड़ जाता है। इस पिता के चित्रण का सुर और किस्सागों पात्र का रवैया ज्ञानरंजन और उनकी तलाश को इस पीढ़ी की सामान्य नकार-धुन से अलग खड़ा करता है।

'फेन्स के इधर और उधर', 'शेष होते हुए', 'सम्बन्ध', 'पिता', 'यात्रा', 'घण्टा', 'बहिर्गमन' और 'अनुभव' सातवें दशक में कहानी को निर्णायक मोड़ देने वाली रचनाएँ मानी गयी हैं। इसमें से अन्तिम तीन कहानियाँ एक त्रयी की तरह पढ़े जाने की माँग करती हैं। संवेदना

के स्तर पर तीनों एक दूसरे से सम्बद्ध हैं। 'बहिर्गमन' इन्हीं तीनो कहानियों में से एक है। इन कहानियों में एक ओर आज़ाद हिन्दुस्तान का वह बुद्धिजीवी समुदाय चित्रित किया गया है जो अपना वर्ग उलाँघने की कोशिश में चढ़ाई पर दौड़ते हुए देश के जन-जीवन की जगह-जमीन से अपना समूल उच्छेदन कर चुका है और दूसरी ओर उन्हें परखता हुआ, उनके छद्म को ध्वस्त करता हुआ, जगह-जमीन से जुड़े किस्सागों का स्वर है जो अपने रुद्र कटाक्षा से जो खुद अपने आप को भी कोई छूट नहीं देता।

इनके पहले तक की भाषा की चुहल और शरारत इन कहानियों में अपने विनोद-भाव को कायम रखते हुए भी एक जुगुप्सा, तिरस्कार, हिकारत की तह को अपने भीतर समेट लेती है। 'घन्टा' शीर्षक कहानी में तथाकथित बुद्धिजीवी पात्र का नाम कुन्दन सरकार है। कहानी उसका वर्णन यूँ करती है- ''कुन्दन सरकार काफी भनकता हुआ नाम था। शहर के तमाम लेखक और बुद्धिजीवी उस तक पहुँच चुके थे। ये सब मध्यवर्गीय लेखक थे, जिसका खाते उसका बजाते भी खूब थे। जहाँ से आदमी की पूँछ झड़ गयी है, इन लोगों के उस स्थान में कुन्दन सरकार को देखते ही खुजली और 'अहोभाग्यपूर्ण' गुदगुद होने लगता था। कुन्दन सरकार और बुद्धिजीवियों के सम्पर्क को ताकने वाले बहुत से दर्शक चारो तरफ फैले हुए थे जिन्होंने शहर के जागरूक केन्द्रों में कुन्दन सरकार की हवा बाँध रखी थी। मैने अपने साथियों को कुछ भी नहीं बताया और कुछ समय के लिये फूट गया। उन्हें अपना लोभ बताना मुमकिन भी नहीं था। 'पेट्रोला' के साथियों में अधिकांश ऐसे थे जो कुन्दन सरकार सरीखे आदमियों को अपने अमुक प्रदेश पर रखते थे। वे लोग पूरी तरह मुड़े हुए थे। केवल मैं ही था, अटका हुआ, मान-अपमान, ओहदे-पैसे और देश समाज से विचलित होने वाला।''

जिस परिवेश की बात इस कहानी में है उसमें एक तरफ ये ''पूरी तरह मुड़े'' हुए लोग है जिनके लिये 'पेट्रोला' नामकी जगह 'कम्फर्ट जोन' या राहत-स्थल है, ''पेट्रोला ऐसी जगह थी जिससे नागरिकों को कोई सरोकार नहीं था,'' कहानी में यह उखड़े हुए लोगों के नशा करने की जगह है। ''उखड़े होने के कारण लग सकता था, समय के साथ सबसे अधिक हम हैं लेकिन...हमारे शरीर में लोथड़ों जैसी शान्ति भर गयी है, नशे की वजह से कभी-कभार थोड़ा गुस्सा बन जाता है...इस नशे की स्थिति में कभी कभी ऐसा भी लगता है, हम सजग हो गये हैं। उद्धार का समय आ गया है और भेड़िया-धसान पूरी तरह पहचान लिया गया है। लेकिन हम लोगों के शरीर में सन्त मलूकदास इस कदर गहरा आसन मारकर जमे हुए थे कि भेड़ियाधसान हमेशा चालू रहा....मेरे साथियों का बीबी-बच्चों, समाज और देश-दुनिया से शायद ही कोई ताल्लुक रह गया था। वे लोग ऐन्टी नहीं थे, स्वाभाविक थे।''

दूसरे सिरे पर कुन्दन सरकार है, और उसका खाने बजाने वाले मध्यवर्गीय लेखक। पेट्रोला से बिल्कुल भिन्न और विपरीत अपने जगत में पूरी तरह से गर्क। और दोनों के बीच फँसा किस्सागो ''अपने साथियों में एकमात्र मैं ही ऐसा व्यक्ति था। जिसका फैसला जिन्दगी ने अभी तक नहीं किया था और जो दो लालचों के बीच अभी गौर और सूझबूझ का तरीका इस्तेमाल कर रहा था।'' बीच फँसे होने का अर्थ ऐसी जगह खड़े होना है जहाँ परिवर्तन के लिये चुनाव और निर्णय की गुंजाइश होती है।

वर्णन की इस भाषा पर गौर कीजिये। वह एक तरह से कथानक और घटनाक्रम का स्थानापन्न है। इसमें एक पूरी बुद्धिजीवी पीढ़ी के व्यवहारों की मंशा के विविध स्तर बोलते हैं। यह पात्र, चरित्र, देश का चित्र खड़ा करने वाले विवरणों का संयोजन मात्र नहीं, कथ्य का विकासक्रम है। इस वर्णन के एक सिरे पर पेट्रोला का समुदाय है जिसके लिये ''ऐसा लगता कि पेट्रोला की जिन्दगी के बाहर चले जाना काफी मुश्किल हो गया है।'' इन

लोगों के बारे में एक विवरण है, ''वे लोग ऐन्टी नहीं थे, स्वाभाविक थे। मुखौटों और पाखण्डो की दुनिया में स्वाभाविक होने का अर्थ अगर 'ऐन्टी' (विरूद्ध) होना नही तो व्यवस्था के बाहर और उदासीन होना है। भाषा उसके वर्णन में भी अपनी चुहल नहीं छोड़ती लेकिन ये किस्सागों के साथी लोग हैं, यहाँ उसकी मंशा आक्रमण या धिक्कार की नहीं है, लगभग 'सलाम' की है क्योंकि वे 'स्वाभाविक' लोग है, प्रामाणिक और वास्तविक, अपनी असलियत से अभिन्न, सोच-कथनी-करनी में एक।

'घन्टा' में यह मुहिम मुखौटापोश भद्रलोक के मुकाबले में 'स्वाभाविक' होने की मुहिम है, लेकिन स्वाभाविक होने का कुल तरीका पेट्रोलावासियों के चित्र में आपने देखा है। किस्सागों अभी अपनी स्वाभाविकता को पूरी तरह से पा नहीं सका हैं। कुन्दन सरकार के पास वह 'शराब के उद्देश्य को पकड़ कर' जाता है और शर्माता भी है- ''अपने साथियों को चरका देकर, उन्हें अपने से अज्ञात रखकर मैं यहाँ मौज के लालच में चला आया. ..मैं अपने को ही फुसला रहा था, बेवकूफ बना रहा था ''क्योंकि लालच का कहीं कोई जवाब नहीं है। शराब जीवन ज्योति हो गयी थी। किसी से शराब क्या पी ली समझा बहुत ठगी कर ली।''

लेकिन नशा इस कहानी में केवल पी कर धुत्त पड़ जाने का पर्याय नहीं है, मुखौटापोशी से लापरवाह हो जाने का, अपनी असलियत से अभिन्न, अपनी स्वाभाविकता के निकट पहुँच पाने का साधन और पर्याय भी है। पेट्रोलावासियों के चित्रण की भंगिमा से कहानी इस नशे को कबीर की अलमस्त फकीरी के आस-पास की चीज बना देती है। इसी नशे के साहस से किस्सागों कुन्दन सरकार की घन्टागीरी में गर्क नहीं हो जाता, यह तबियत बनाए रखता है कि ''फाड़ कर रख दूँ मैं इसका और अपना ढोंग,'' निर्णय करता है कि ''जल्दी ही, निगला जाए न उगला जाए वाली स्थिति को तमाम कर देना है। सच्चाई का क्षण निकट है और अब ठिकाना हो जाएगा'' और इसी नशे के दुस्साहस से, एक ''बागी मस्ती'' से भरे दिमाग से वह शहर की ''सबसे शरीफ जगह'' माने जाते रेस्तराँ में ''सब स्वस्थ, तर और चिकने चेहरे'' वालों के जमघट में गाना गाती हुई लड़की का मैला-कुचैला, संगीत के साथ हिलता हुआ नाड़ा लटक जाने पर बेकाबू हँस कर, अपने मन का सच बोलकर, गाली देकर, कोकाकोला की बोतल फेंक कर हंगामा खड़ा कर देता है। इस हंगामे के जरिये वह अपने ''जंगलीपन और जिन्दगी की भभक'' को अभिव्यक्त करता है, अपनी सच्चाई के साथ एकाकार होकर इस तथाकथित शरीफ किन्तु नकली अतः अश्लील मुखौटापोश दुनिया का परदा फाश करता है। वहाँ से मारपीट कर निकाले जाने के बाद पेट्रोला को उसकी पूरी वापसी होती है।

इस त्रयी की दूसरी कहानी 'बहिर्गमन' और तीसरी कहानी 'अनुभव' है। तीनो कहानियों के पात्र और अगर माने तो कथानक अलग अलग हैं लेकिन कथ्यसूत्र इस दृष्टि से एकबद्ध है कि जीवन में मकसद की तलाश करता हुआ एक युवा मन, जो इन कहानियों में किस्सागों भी है, अपने सन्दर्भ-जगत में उपलब्ध और संभावित विकल्पों को बारी बारी से परखता और छोड़ता-पकड़ता है। 'घन्टा' इस यात्रा का पहला पड़ाव है जिसमें किस्सागों पात्र कुन्दन सरकार का घन्टा बनकर उसकी दुनिया में बसने से इंकार तो कर देता है लेकिन लौट कर पेट्रोला की बेहोशी में ही जाता है, जो कोई वास्तविक विकल्प नहीं है। पहली दोनो कहानियों में चित्रित सन्दर्भ जगत लेखकों और बुद्धिजीवियों का संसार है। व्यापक अर्थ में इन्हें ऊर्ध्वोन्मुख दिशा में गतिमान, अपनी जगह-जमीन से कटे होकर भी जुड़े होने का ढोंग करने वाले सुविधाभोगी सम्पन्न संसार के बाशिन्दों की तरह देखा जा सकता है। 'बहिर्गमन' का किस्सागों इस दुनिया को बारीकी से तटस्थ और विरक्त भाव से देखता और विदा देता है, पेट्रोला तो हनी लौटता लेकिन कहीं और भी

जाता नहीं है। 'अनुभव' में इस संसार के बरक्स शहर का दूसरा हिस्सा उभर कर सामने आता है, वह हिस्सा जो किस्सागों को उसका मकसद बनकर पास बुलाता है।

इस त्रयी की दूसरी कहानी 'बहिर्गमन' आपके पाठ्यक्रम में निर्धारित है। आगामी पृष्ठों में इसे थोड़ा विस्तार और गहराई से देखने का प्रयत्न किया जा रहा है।

9.4 बहिर्गमन : पाठ-बोध और प्रक्रिया

कहा जा सकता है कि ज्ञानरंजन की पूर्वोक्त त्रयी में चित्रित देशकाल बीसवीं शताब्दी में सत्तर के दशक का बुद्धिजीवी संसार है। स्वाधीनता के बाद के पन्द्रह बीस वर्षों में हिन्दी के बौद्धिक-साहित्यिक गतिविधियों का केन्द्र महानगर बनते हुए नगर दिल्ली में स्थापित हो चुका है। दिल्ली के बुद्धिजीवी संसार में हिन्दीभाषियों की दुनिया में दिल्ली के बाहर-प्रायः कस्बों या छोटे शहरों-से आए हुए लोगों का निवास है। इस देशकाल में वे पूर्णतः या आंशिक रूप से अजनबी है और अपने अपने सन्दर्भ के अनुसार तालमेल बिठाने की सफल या असफल कोशिश कर रहे हैं।

ये कस्बों और छोटे शहरों से युवा पीढ़ी के पलायन के दिन हैं। कुछ का जाना इसलिये हुआ कि ''शहर छोड़कर चले जाने के अलावा उनके पास दूसरा कोई रास्ता भी नहीं था'' और कुछ का इसलिये कि ''वे कदम मिलाने के लिये बौखलाए हुए दौड़े चले जा रहे थे।'' इनमें से कितने ही वे लोग थे जिन्हें ''दुनिया की रफ़्तार ने अवाक् कर दिया,'' और कुछ ऐसे भी जो ''जीने के लिये लोगों और प्रदेशों की तलाश'' करने को बेकाबू हो गये। कुछ का कस्बा ''छोड़ना छप्पर और पेट की मजबूरी में उजड़'' जाना है, कुछ के सन्दर्भ में ''वह गुमनाम लोभ से पराभूत, अज्ञात दुनिया के प्रति चमत्कृत एक बेबुनियाद भागमभाग थी।''

प्राथमिक स्तर पर ये 'बहिर्गमन' के शीर्षक की विविध अर्थछवियाँ हैं जिन्हें कहानी अपने भीतर से प्रतिच्छवित करती है।

शिक्षित युवा पीढ़ी का अपनी जगह, जमीन से क्रमशः उच्चाटन और उच्छेटन आजादी के बाद के दशकों का सामान्य परिदृश्य है जिसके विभिन्न आयामों की पड़ताल करने के लिये 'बहिर्गमन' में तीन पात्रों पर फोकस किया गया है। पहला कथा का 'मैं' अथवा वाचक पात्र जिसे विश्लेषण में अवसर के अनुसार आत्मवाची/किस्सागों कहा जाएगा; दूसरा मनोहर जिसकी कहानी वह सुना रहा है और जिसे प्रकारान्तर से कहानी का नायक कहा जा सकता है और तीसरा सोमदत्त। इन तीनों के माध्यम से तीन अलग अलग संसार प्रस्तुत या संकेतित किये गये है जिनके बीच कहानी आवाजाही करती रहती है- कस्बा, महानगर और विदेश। कस्बा और महानगर ठोस कथाभूमियाँ हैं। यूरोप अथवा विदेश मनोहर का वह अन्तिम गन्तव्य है जिसका मूर्त अस्तित्व सोमदत्त को बनाया गया है। इन तीनों पात्रों को तीन प्रकार की मानसिकताओं का व्यवहार बनाकर प्रस्तुत किया गया है।

'मैं' और मनोहर : विपरीत ध्रुव

मैं और मनोहर दोनो ही कस्बे की पैदाइश हैं लेकिन 'मैं' अपनी मानसिकता में कस्बे का आदमी है। उसके मनोजगत में कस्बा उसकी ''अपनी जगह'' का, अपनी ''जड़'' का नाम है। कस्बे से जुड़े विवरणों को ध्यान से देखिये। वह अपने आप में एक भरापूरा चरित्र नजर आएगा जिसके चित्र पर आत्मवाची के दुलार की छाप है। उसे लगता है कि अपनी जगह बेमिसाल होती है और आदमी टूटा हुआ पत्ता नहीं है। इसके विपरीत मनोहर कस्बे

का ''सबसे अधिक परेशान, बेचैन और उत्पीड़ित युवक'' है। ''वह ख्वाबों में डूबा रहता'' है, उसके लहू में बेकरारी है। उसकी मानसिकता उच्चाटन और मूल से उच्छिन्नता की है। वह कस्बे का आदमी नहीं है, वह टूटा पत्ता है मनोहर को लगता है कि ''कस्बा निहायत गन्दा था। मक्खियों, धूल उड़ाती गाड़ियों और विश्राम करते हुए लोगों का साम्राज्य चारों ओर फैला था।''

कस्बे में संभावनाएँ शेष नहीं हैं। वह आजाद हिन्दुस्तान की विकास परियोजनाओं से बाहर है। एक उनींदी, चुपचाप, आवृत्तिशील दिनचर्या वहाँ का कालक्रम है जिसमें न जीविका के साधन शेष हैं, न जीवन्तता का अहसास। इसलिये वे उपरोक्त विभिन्न कारण और प्रकार उत्पन्न होते हैं जिनके तहत कस्बे से पलायन अनिवार्य हो जाता है।

मनोहर और उसके सालभर बाद आत्मवाची शहर को प्रस्थान करते हैं। मनोहर अपने सपनों के सन्धान में, आत्मवाची अपनी जीविका की मजबूरी में। सालभर के अन्तराल में मनोहर ने शहर में झण्डा गाड़ दिया है, गजट में उसका फोटो भी छपा है जबकि एक साल का यह आत्मवाची के ऊपर कसाई के चाकू की तरह चल रहा था। अन्ततः शहर में उसे एक छोटी सी नौकरी मिलती भी है तो उसके पिता की गिड़गिड़ाती चिट्ठी के जवाब में मनोहर की कृपा से ही।

कहानी में पात्र की हैसियत से अपनी जगह और नजर अख्तियार कर लेने के बाद आत्मवाची किस्सागों में बदल जाता है, मनोहर के स्वप्न-संधान की असलियत का साक्षी, एक झरोखा जिसके जरिये शहर, मनोहर और सोमदत्त के क्रिया-कलाप में झाँका जाता है। वह केवल वर्णन की आवाज नहीं, एक नज़रिया, एक मूल्यदृष्टि, एक कसौटी है।

पूरा वृत्तान्त उसके नजरिये से ही हमारे सामने आता है और अपने बारे में उसका यह बयान बताता है कि उस नज़रिये की बनावट क्या है- ''मैं एक पुख्ता आदमी बनने की अभिलाषा को लेकर पिछले पच्चीस वर्षों से कछुआ बना हुआ हूँ।''... ''गतिवान लोगों का 'अनुभव' है कि मैं जैसे तैसे पच्चीस वर्ष पहले की ही स्थिति में पड़ा हुआ हूँ। मैं हिल नहीं रहा हूँ और मुझे अपनी उबासी भरी दुनिया से मोह है।''

मनोहर और सोमदत्त 'गतिवान' लोगो की श्रेणी में आते हैं। किस्सागों उनकी दौड़ को ''गुमनाम लोभ से पराभूत, अज्ञात दुनिया के प्रति चमत्कृत एक बेबुनियाद भागमभाग'' की तरह देखता है। अपने प्रति उनके दृष्टिकोण को वह 'अनुभव' का नाम देता है, इस शब्द का इस्तेमाल वह एक विशेष अर्थ में करता है और कोष्ठक में अपनी टिप्पणी से उसे खोलता भी है- ''जी हाँ अनुभव, क्योंकि निर्णय करने के लिये किसी भी सामाजिक राजनैतिक दर्शन से पूरी सहायता ले सकने में वे असमर्थ है। पुनः ''पुरी सहायता'' के विशेषण में भी एक व्यंजना है। निर्णय तक ले जाने वाली ''पूरी'' सहायता अधूरे दिखावे की अवसरवादिता से अलग है। उनके निर्णयों में किसी राजनीतिक-सामाजिक दर्शन का जरा सा भी हाथ नहीं है। आत्मवाची जिसे ''पुख्ता आदमी बनने की अभिलाषा'' कहता है वह उनकी नजरों में कछुआ बने रहना है। वे मानो खरगोश और कछुए की कहानी वाले खरगोश हैं जिन्होंने अबकी बार रास्ते में सो न रहने के सबक भी ले लिये हैं।

''पुख्ता आदमी'' होने का अर्थ : मूल्यदृष्टि

कहानी में मनोहर और आत्मवाची के रिश्ते के बारे में जगह जगह पर आए उल्लेखों को जोड़ कर पढ़े तो आप पाएँगे कि वह मनोहर से खार खाता है, उस पर शक करता है, उसके पीछे पड़ा रहता है इत्यादि। लेकिन उससे खार खाते हुए उसके साथ भी बना

रहता है, उससे उलझता नहीं। उसे अपने बारे में कोई भ्रम नहीं है। वह साफ कहता है कि ''मैं विद्रोही नहीं था। मेरा मार्ग नितान्त सड़ियल, भाग्यशून्य और आम था।'' लेकिन एक अटल संकल्प के साथ वह ''अपने मामूली जीवन को बस केवल चौकन्नी पहरेदारी के अन्दर जिलाए रखने की ही तमन्ना'' करता है। उसके इस कथन में कहानी की संरचना का बीज समाया हुआ है- मनोहर के जाने के दिन ''मेरे अन्दर भी एक विस्फोट हुआ... मैने पाया मैं मनोहर का पीछा कर रहा हूँ...मेरी विचित्र तबियत है कि जिन लोगों पर मुझे शक हो जाता है, उन्हें मैं छोड़ नहीं पाता। उनकी पूरी कलई मेरे लिये जरूरी हो जाती है।''

'मनोहर का पीछा' और 'अपनी चौकन्नी पहरेदारी' - यह उसके जीवन का प्रोजेक्ट भी है और कहानी का भी।

यह ''चौकन्नी पहरेदारी'' पुख्ता आदमी बनने का पर्याय है, अपने मामूली जीवन को जिलाए रखने के लिये वह अपने आप का पहरेदारी है, अपने कस्बईपन को, अपने सारतत्व को बचाए रखने की पहरेदारी है। वह मनोहर के पीछे पड़ा रहता है लेकिन खुद अपने आप को भी बख्शता नहीं। मनोहर की संगत में वह ''शहर के गुलजारों से कई बार फँसते फँसते वापस हुआ।'' उसे ''फूँक फूँक कर चलना पड़ता था।'' अनगिनत बार इस कठोर अनुशासन की वजह से।

दिल मलाल में डूबा और चेहरे पर भुखमरी छा गयी लेकिन फिसलन के ऐसे खराब वक्त में दिमाग ने एक खास किस्म से मुस्कुरा कर शहर का चिट्ठा खोल दिया। दिमाग के अलावा जो दूसरी बड़ी बात थी वह थी रकम का टोटा। इस टोटे ने दिमाग से कहीं ज्यादा शक्तिशाली कवच का काम किया।'' अपनी ''चौकन्नी पहरेदारी'' में वह खुद अपने आपको भी सन्दिग्ध पाता है। शहर का चिट्ठा खुलने और अपने लिये एक विश्वसनीयता अर्जित करता है। उसे पहले मनोहर, फिर मनोहर के साथ सोमदत्त के भी सोच-विचार, दिल-दिमाग, क्रिया-कलाप की छान-पड़ताल की मानो झक सवार हो गयी है और उसने पाया है कि वह मनोहर का पीछा कर रहा है। इस छान-पड़ताल को उसने एक 'काम' की तरह उठाया है जो दरअसल ''केवल समाज और आदमी का तालमेल'' समझने की चाह का नाम है।

इस मशक्कत का उद्देश्य और कुल हासिल क्या है? साफ साफ बता सकने लायक शायद कुछ नही। किस्सागों अपने लोगों की नेकनीयत सलाहों के बारे में बताते हुए कहता है कि ''मैं नौकरी की अर्जियाँ भेजता रहा और पढ़ता रहा। मैं ने लोगों का दिल नहीं दुखाया लेकिन अन्दर अन्दर मैं माना नहीं, अपने ही मार्ग पर चलता रहा। लोगों को पता नहीं था मेरे अन्दर किस किस्म का आदमी बन रहा है।''

खुद को एक पुख्ता किस्म का आदमी बनाने की आत्म-सजगता एक जीवन पद्धति है, अपने मूल्यों पर टिके रहने की जिद जो जीवन-पद्धति को शुभ-लाभ के गणित और 'हासिल' के पैमानों के बाहर जाकर परखती हैं।

इसी मानसिकता वाला आत्मवाची 'बहिर्गमन' का किस्सागो है। पूरा किस्सा उसके नजरिये से ही हमारे सामने आता है और अपने बारे में उसका यह बयान बताता है कि उस नजरिये की बनावट क्या है। वह मनोहर की दुनिया के बाहर का आदमी है इसलिये उसे एक फासले से, एक परिप्रेक्ष्य के साथ, आलोचनापूर्वक देख सकता है। और क्योंकि खुद अपनी हैसियल, मनोहर के साथ अपने रिश्ते आदि को लेकर अपनी नीयत पर सन्देह

कर सकता है इसलिये अपनी आलोचना में एक सन्तुलन, विश्वसनीयता और अधिकार भी अर्जित कर लेता है।

कथ्य और कथानक

आप देखेंगे कि ऐसा कोई घटनाक्रम 'बहिर्गमन' में नहीं है जिसे हम ज्ञात और प्रचलित अर्थ में कथानक कह सकें। नयी कहानी के साथ कहानी के विधान में यह नया मोड़ आया कि कहानी अभी हाल तक उत्तरोत्तर घटना-विरल से लेकर घटनाविहीन तक होती चली गयी है। उसका स्वरूप कहानी की अपेक्षा वृत्तान्त के अधिक निकट की वस्तु बन गया है।

चरित्र चित्रण के परम्परागत कथानकों में चरित्र की परिभाषा यह है कि वह आचरण के द्वारा अपने अभिप्राय को प्रमाणित करता है। इसके लिये उसे किन्हीं घटनाओं या परिस्थितियों में डालकर कहानी बुनी जाती है और उसे उन परिस्थितियों के लिये प्रतिक्रियागत किया जाता है। 'बहिर्गमन' में यह काम वृत्तान्त की अत्यन्त रोचक शैली के द्वारा किया गया है। पात्र और परिस्थिति या घटनाक्रम के घात-प्रतिघात द्वारा चरित्र को उभारने की बजाय सामान्य जीवन-प्रवाह को एक असामान्य रूप से व्यंजना-समर्थ भाषा की विवरण शक्ति और वर्णनक्षमता द्वारा साकार किया गया है।

पहले कहा जा चुका है, कस्बे के विवरणों में किस्सागो के दुलार की छाप है। इन विवरणों में कस्बे का भूगोल और कस्बे के लोग - दोनों ही शामिल हैं। ऐसा नहीं कि कस्बे की खराबियों और कमियों की तरफ से आँखें मूँद ली गयी हैं। उनका भी जिक्र है जरूर लेकिन उस सबके समेत कस्बे को देखना लगाव और दुलार का देखना है। बल्कि मनोहर से खार खाने का एक कारण उसके कस्बा छोड़ जाने का तरीका भी है। वह कह कर गया कि बन्दीगृह की यातना से मुक्त होने जा रहा हूँ। हद तो यह थी कि वह अपनी जगह पर लौटकर एक बार थूकने तक को तैयार नहीं था। जब वह अपना प्रदेश छोड़ कर गया ''मौसम की दृष्टि से वे ग़ज़ब के दिन थे। बस्ती से थोड़ा बाहर जाने पर दिखता नदियाँ खलबला रही हैं। और सफेद हो गयी हैं। वृक्ष सीझे हुए हैं और जंगलों से भीगी हुई हवाओं की आवाजें आ रही है। धरती हमेशा जैसी आतुर थी और लोग....लोगों की कुछ मत पूछिये। मुझे हैरानी हुई दुनिया को इतनी आसानी से छोड़कर वह चल कैसे दिया। अपनी जगह बेमिसाल होती है और आदमी टूटा हुआ पत्ता नहीं हैं।''

कस्बा ''अपनी बेमिसाल जगह'' है और वहाँ के लोग अपने 'दुर्लभ' लोग है जिन्हें वह ''प्यारे और भोंदू लोग'' कहता है। ''बेमिसाल'', ''दुर्लभ'' और ''प्यारे'' होने का कारण यही है कि वे ''अपने'' हैं, वे 'भोंदू' हैं क्योंकि जीवन के गणित-ज्ञान से अछूते, असली और प्रामाणिक लोग हैं लेकिन ''उनका विकास के साथ नाता नहीं रह गया था इसलिये हमें अपना पूरा प्रदेश बीमार, सिकुड़ता हुआ और वास्तविक दुनिया से भिन्न लगने लगा था। यह वास्तविक दुनिया क्या है, इसकी कुछ बिखरी हुई अफवाहे हमारे पास बाहर से आया करती थीं।''

'विकास के साथ नाता' रखने का अर्थ 'वास्तविक दुनिया' का अर्थ बदल जाना है। जैसे खरे सिक्कों को खोटे सिक्के चलन के बाहर कर देते हैं, उसी तरह विकास के नाम पर जन्म लेती हुई एक नकली, खोखली और अवास्तविक जिन्दगी का गणित 'वास्तविक' को अप्रासंगिक और अनावश्यक बना कर खुद उसकी जगह ले लेता है। 'वास्तविक दुनिया' वह प्रतीत होती है जहाँ विकास घटित हो रहा है, जहाँ उसके घटने की गहमा-गहमी है, जहाँ तेजी से बदलते यथार्थ ने मनोहर जैसे मौकापरस्त लोगों के लिये अपने धँसने

और जगह बनाने और फैल जाने के अवसर पैदा कर दिये हैं। जिस 'हम' को 'अपना' पूरा प्रदेश बीमार, सिकुड़ता हुआ और वास्तविक दुनिया से भिन्न लग रहा है वह इस कालखण्ड की युवा पीढ़ी है जिसके एक पक्ष का प्रतिनिधि किस्सागों है और दूसरे पक्ष का प्रतिनिधि मनोहर। सोमदत्त मनोहर का ही अगला विकास-सूत्र है।

घटनाक्रम के हिसाब से कथानक को सूत्रबद्ध किया जाय तो कुल इतना है कि आत्मवाची कस्बे को प्यार करता है और मनोहर कस्बे से नफरत। दोनो ही दो अलग अलग वजहों से कस्बा छोड़ कर शहर जाते हैं। आत्मवाची रोज़ी-रोटी के लिये और मनोहर ''जीने के लिये नये प्रदेशों और लोगों की तलाश'' के लिये ''बेकाबू होकर'' क्योंकि ''कस्बे में रोमांच मुर्दा हो चुका है।'' मनोहर शहर जाता है, छा जाता है, लगता है कि सब कुछ पा लिया गया है तभी अचानक उसकी मित्रमण्डली में सोमदत्त का आगमन होता है। वह विदेश से लौटा है। मनोहर के लिये अब तक जो शहर के मुकाबले कस्बे की जगह थी वही सोमदत्त के लिये विदेश के मुकाबले देश की जगह है। मनोहर अपने प्राप्त और उपलब्ध से पुनः असन्तुष्ट और बेचैन हो उठता है, पैंतरा बदलता है और विदेश जाकर ही दम लेता है। उसके विदेश-प्रस्थान के क्षण पर कहानी का अन्त होता है।

'बहिर्गमन' को पहले-पहल नयी कहानी की नकार मुद्रा के चरम बिन्दु की तरह पढ़ा गया था। इस तरह के पाठ में बयान के सुर को अनसुना करके मनोहर और सोमदत्त के पक्ष को ही पूरा कथ्य मान लेना होगा। आत्मवाची के नज़रिये के झरोखे को ध्यान में रखते हुए कथा की पड़ताल करें तो कहानी में चित्रित बुद्धिजीवी जगत के इन दोनो पक्षों के फासले और तकरार को रेखांकित किया जा सकता है। शहरी जीवन का यही इलाका फोकस में लाया गया है।

''जब शहर की जानकारी मुझ पर काफी खुल गयी तब पता चला, यहाँ का मामला बेहद संगीन है। लगता था होश उड़ जाएगा। यहाँ बला के सुन्दर बदन और तिलस्मी चालढाल से भरे स्थान थे। शीशे पर तैल आकृतियों जैसी बिछलती रोशनी थी और थी बिगाड़ने वाली नशीली महक। चित्रकार रंगीन कीचड़ की दुर्घटनाओं में थपथप कर रहे थे। कूकते कवियों, पोथालिक्खाड़ों, स्निग्ध अखबारनवीसों और शीर्ष बुद्धिजीवियों का भी एक झुण्ड था। इस सबके पास अपनी अपनी जगहें थीं। ये सब लोग स्वतंत्र थे और इन्होंने लड़ाई झगड़े को साफ कर दिया था। कदम कदम पर ऐसा संगीत प्रसारित होता मिलता था कि आश्चर्य होता था आस पास पौधे कैसे जीवित हैं और खिड़कियों के काँच क्यों नहीं टूट जाते।''

लेकिन शहर महज़ इतना सा ही नहीं है, कस्बा भी शहर में बढ़ता चला आया है - ''इस प्रकार शहर पर वनमानुषों ने कब्जा कर रखा था। गनीमत महज़ इतनी थी कि भौगोलिक दृष्टिकोण से ये शहर के एक थोड़े और अलग हिस्से पर ही काबिज़ थे। बक़ाया पूरा इलाका ग़रीबों और मेहनतकशों की कथा।''

कहानी की लिखन्त में शुरू से आखिर तक शब्दशः ऐसे संकेत पिरोये हुए हैं जो विकास और विस्थापन के व्यापक समसामयिक वृत्तान्त का पूर्वानुमान प्रतीत होते हैं। 'बहिर्गमन' का अर्थ तब कस्बे से महानगर, महानगर से विदेश की ओर आत्महीन व्यक्तिगत विकास के लिये बहिर्गमन का किस्सा नहीं रह जाता, उस समूचे युवा शिक्षित समुदाय के 'ऊर्ध्वगामी पतन' का किस्सा बन जाता है, जिसके जिम्मे सोचने समझने, देश के विकास की योजनाएँ बनाने और भविष्य की अगुआई करने का काम होना चाहिये। तब यह विकास के सार्वजनिक स्वप्न पर व्यक्तिगत कब्जे का किस्सा बन जाता है, उन लोगों का किस्सा जो इस क्रम में अपने आप को, अपने 'पुख्तापन' को, अपनी जगह को, अपने लोगों

को अपने आप से काट कर निर्ममतापूर्वक अजनबी और पराए होते चले जाते हैं। अर्थात् खुद आगे बढ़ते चले जाने के लिये अपने भीतर के ''गँवई रांगड़पन'' को जो उन्हें वास्तविक और प्रामाणिक बनाता है, अपनी ''जगह'' को जो कस्बा होने और विकास के साथ नाता न होने के बावजूद 'अपनी' होने की वजह से बेमिसाल' है, अपने कस्बे के ''भोंदू और प्यारे' लोगो को जिनकी ओर विकास को वस्तुतः उन्मुख होना चाहिये, पीछे छोड़ दिया जाता है। मनोहर सरीखी मानसिकता ने विकास की समूची परियोजना को हाइजैक कर लिया है। तब 'बहिर्गमन' का यह कथानक स्वयं अपनी निजता से कटकर अलग हो जाने का, निरर्थक और निस्सार रह जाने का मामला बन जाता है।

स्वतंत्र और निर्द्वंद्व बनाम प्रतिबद्ध

शहर के इस समुदाय की पहचान के लिये कहानी में दो संकेत दिये गए हैं। वे 'स्वतंत्र' हैं और उन्होंने 'लड़ाई झगड़ें को साफ' कर दिया है। तत्कालीन बुद्धिजीवी संसार में 'स्वतंत्र' का अर्थ प्रतिबद्धता के प्रगतिवादी अर्थ के विरुद्ध होना था। 'स्वतंत्र और 'प्रतिबद्ध' परस्पर प्रतिपक्षी उद्देश्य थे। विचारधारा के रूप में 'स्वतंत्र' के भी अपने अर्थ और संदर्भ हैं पर यहाँ कहानी में 'स्वतंत्र' की वैचारिकी का वह पक्ष अपवारित है। उसे प्रतिबद्धता और दायित्वबोध के उलट आत्मकेन्द्रित, स्वयंपोषी, स्वार्थी संकीर्णता, सारहीनता और सतहीपन का पर्याय बना कर सामने लाया गया है। लड़ाई झगड़े को साफ कर देने का सीधा अर्थ 'अपने लोगों' को अपनी 'जगह-जमीन' के पक्ष में खड़े होने से, 'संघर्ष' की संभावना से इंकार है।

'आत्मवाची' ने खुद को नौकरी के अलावा मनोहर का 'पीछा' करने के काम पर भी लगाया हुआ है। उसके माध्यम से 'नयी कहानी' में अभिव्यक्त 'नकार मुद्रा' के माध्यम से अभिव्यक्त होने वाले आक्रोश, विद्रोह और तलाश की असलियत का पर्दाफाश किया गया है। किस्सागों देखता है कि मनोहर ''भेदी और चालाक'' है..., ''देखते देखते, प्रस्तुत समय पर मनोहर खिंचे हुए रबर की तरह फैल जाता है,''... उसका ''गणित लाजवाब'' है, उसके पीछे ''अच्छा खासा अहो-अहो दल'' मौजूद है जो ''अपनी छाती में हाय मानवता का दर्द'' और ''मुँह में लोकतंत्र की चुसनी'' लिये हुए हैं। अपना सारा स्वयंसेवी विकास-व्यापार का यह दल मानवतावाद और लोकतंत्र के नाम पर चला रहा है। इन अंशों में मनोहर न केवल एक व्यक्ति बल्कि एक पूरे समुदाय और उसकी मानसिकता का नाम है। यह विकासयात्रा उसे निरन्तर 'सफलता' की ऊँचाइयों पर ले जा रही है जिसका नतीजा दस साल के अन्तराल में आधी उम्र में ही गन्तव्यहीनता को पहुँच जाना है। जहाँ वह ''प्रश्न-उत्तर के जंजाल के बाहर उदासी के साथ विश्राम करता रहता...यह मनुष्य के अन्त की उदासी थी। कई प्रेम, कई भरे हुए एल्बमों, कई साक्षात्कार, कई उद्घाटन, कई बार टेलीविजन और कई डेलीगेशन के बाद उसने समझ लिया, जल्दीबाजी की जरूरत नहीं। जीवन में एक दो सफलताएँ, एक दो उद्देश्य ही बाकी बचे हैं जबकि उम्र बमुश्किल अभी आधी भी नहीं ढली।''

लेकिन इस हद पर कहानी में विदेश से सोमदत्त का आगमन होता है और एक नया गन्तव्य उपस्थित किया जाता है। उसके सामने मनोहर को ऐसा महसूस होता है कि अभी मुझे अपना बहुत विकास करना है, इतना विकास कि सोमदत्त पिछड़ जाए। किस्सागों को महसूस होता है कि सोमदत्त मनोहर के साथ बिल्कुल वैसा ही व्यवहार कर रहा है जैसा मनोहर ने कभी मेरे साथ किया था।

एक तरह से यहाँ कहानी के पूर्वार्द्ध का विन्यास दोहराया जाता सा प्रतीत होता है। एक छोर पर कस्बा, दूसरे पर महानगर का रूपान्तर यहाँ एक छोर पर देश दूसरे पर विदेश

में हो जाता है। मनोहर की सफल महानगरीयता सोमदत्त के मुकाबले कस्बाई मानसिकता के समकक्ष रह जाती है। लेकिन यह केवल पुनरावृत्ति नहीं, एक निहित उद्देश्य के साथ पुनरावृत्ति है। मनोहर और सोमदत्त की परस्परता के चित्र में कहानी रचनात्मक संवेदना में 'स्वतंत्र' और 'आधुनिक' के अर्थ तथा व्यवहार की परीक्षा करती है। मनोहर, सोमदत्त और किस्सागो बुद्धिजीविता के दो पक्ष और तीन स्तर हैं। एक पक्ष मनोहर और सोमदत्त का है जो दो स्तरों में बँटा हुआ है, दूसरा पक्ष - प्रतिपक्ष - किस्सागो का है।

बुद्धिजीवी को लोकतंत्र प्रायः फुसला-परचा कर रखना चाहता है क्योंकि वह आवाज़ उठाने, शोर मचाने में समर्थ होता है और व्यवस्था को चलाने व हिलाने में समर्थ चतुर, व्यवहार-कुशल बुद्धिजीवी इसकी कीमत वसूलता है। मनोहर उसी कोटि का बुद्धिजीवी है ''मनोहर ने बुद्धि का योग साध रखा था, मीर किस्म के शक्तिशाली लोग भी उसे रँगे हाथो नहीं पकड़ना चाहते थे।'' उसने अपनी शक्ति का अर्जन शक्तिशाली लोगों पर यह प्रभाव जमाकर किया है। सोमदत्त को कहानी में ''सर्वाधिक छँटा हुआ बुद्धिजीवी' कहा गया है। ''उसकी जेब में दूसरे को तड़पा देने वाला बल्कि कुचल देने वाला विश्वबाजार था।'' उसके सामने मनोहर को महसूस होता है कि - ''जंगल में शिकार ही न हो तो शिकारी कब तक झक मारता रहेगा। यहाँ केवल निब और स्याही है, रंग और ब्रश हैं। इतने मात्र से क्या हो सकता है? घटनाएँ बन्द हो गयी हैं। उमस भर गयी है। बैठे रहने के अलावा यहाँ कुछ नहीं किया जा सकता। दुर्भाग्य से समस्त सुखद और करुणाजनक घटनाएँ समुद्र पार घट रही हैं। इसलिये लोग वहाँ रचनारत हैं और वह तनावविहीन रक्तपात में सैलानी की तरह घूम रहे हैं।''

किस्सागो को लगता है कि ''सोमदत्त बुद्धिमत्ता का सफल आधुनिक मौला होता जा रहा है'' और ''अब पूरी तरह से उस उच्च बौद्धिक हालत पर पहुँच गया है जहाँ से उसे वापस बुलाया नहीं जा सकता।'' उसे विस्मय होता है कि ''वह कौन सा नुस्खा है इसके पास जिसने इसके सभी दुख मार दिये हैं और यह सफलता की गर्द को स्वाद के साथ चाट रहा है।'' इन दोनो की तुलना में वह स्वयं को ''अपनी निजी और बुद्धिविहीन हालत में घिरा हुआ'' पाता है। बुद्धि के उपयोग के बारे में उसके विचार अलग हैं। मनोहर की इस परिणति पर उसे गुस्सा भी इसी वजह से है- ''मुझे पता नहीं क्यों उम्मीद थी कि मनोहर अपने दिमाग का सदुपयोग करेगा लेकिन वह सीधा मुनाफ़े की तरफ़ चला गया। उसने ज्यों ज्यों अपनी गृहस्थी सजानी शुरू की, वह तिकड़मी होता चला गया और उसकी अभूतपूर्व आक्रामकता की गर्दन टूटती चली गयी।''

इस अंश में किस्सागो के सुर का आक्रोश, आक्रमण और विध्वंस का तेवर उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। मनोहर के लिये फिर भी कहीं एक दर्द है लेकिन सोमदत्त बिल्कुल असहनीय और अक्षम्य बनाकर प्रस्तुत किया गया है। कहानी के शुरू का ख़्वाबों में डूबा हुआ, लहू में बेकरारी लिये, कस्बे का सबसे अधिक बेचैन और उत्पीड़ित युवा मनोहर सोमदत्त के निर्देशन और सहयोग से शहर के साहित्य जगत को 'अस्तित्व की साजिश' की ओर ले जाता है और ''जूझते हुए लोगों को दरकिनार'' कर देने का कारण बनता है। अस्तित्ववादी विचारधारा की संकट और संत्रास वाली शब्दावली, राम और रावण के बीच अन्तर का खात्मा क्योंकि 'मृत्यु में मनुष्य केवल व्यक्ति है, 'स्वतंत्र' का अर्थ किसी भी सम्बन्ध, किसी भी दायित्व, किसी भी लगाव से मुक्त हो जाना है क्योंकि प्रेम का मतलब ''कुछ नहीं, केवल पालतूपन'' है- ये साठोत्तर साहित्य जगत के नये इजाफ़े हैं। सम्बन्धों और लगावों को तोड़ना और छोड़ना ''ताकतवर आदमी की तरह'' बर्ताव करना है। और ताकतवर होना ही अभिप्रेत है।

साहित्य जगत में इस नयी गहमागहमी के प्रति अपनी चिढ़ और गुस्से के सुर को सन्तुलित करते हुए किस्सागों की प्रश्नवाचक टिप्पणी है, ''मेरे सामने यह कठिन प्रश्न था, इन महानुभावों में आखिर आपत्तिजनक क्या है। वे बुरी चीजों के विरूद्ध हैं। क्रान्ति के लिये इन्होंने अपना अग्रिम दस्तख़त सौंप रखा है। फिर मेरे दिमाग में इनका उल्लू क्यों खिंचा जा रहा है। ''और मानो जवाब में वह उनके जीवन से दो प्रसंग उद्धृत करता है। ये प्रसंग आत्महीनता और निजत्व के विसर्जन की उस हद को रेखांकित करते हैं जहाँ पहुँचकर मनोहर और सोमदत्त जैसे लोगों के लिये 'विकास' अपने आपे से भी स्वतंत्र, स्वायत्त मूल्य हो जाता है जिसके लिये कोई भी बलि दी जा सकती है। यह विकास नहीं, उसका विद्रूप है। सोमदत्त के जीवन का जो प्रसंग अंकित किया गया है उसे कहानी दाम्पत्य में उदासीनता, फासले और अजनबीपन की उस हद की तरह देखती है जहाँ पत्नी स्वयं पति को एक वेश्या का पता देती है। सोमदत्त ने स्वयं इसे आजादी के अनुभव का नाम दिया है। मनोहर सोमदत्त की प्रेरणा से अपनी प्रेमिका से अकारण सम्बन्ध-विच्छेद करके, अपने विकास के लिये स्वयं को आजाद करता है।

कहानी के इन दोनो प्रसंगों में से पहला, सोमदत्त के जीवन से जुड़ा प्रसंग निर्मल वर्मा की एक कहानी ''एक रात का मेहमान' और दूसरा, मनोहर के जीवन से जुड़ा प्रसंग श्रीकान्त वर्मा की उपन्यासिका 'दूसरी बार' में चित्रित प्रसंगों पर आधारित हैं।

कहानी में यह सवाल भी उठाया गया है कि यूँ आज़ाद हो चुकने के बावजूद सोमदत्त बार बार लौट कर क्यों आता है? सोमदत्त के शब्दों में, ''मैं यहाँ बार बार आता हूँ पर यहाँ कि भूमि, यहाँ के आकाश का मेरे लिये क्या मतलब रह गया है... क्या मतलब है मेरे यहाँ आने जाने का? उस आज़ादी के बिना क्या कहीं रहा जा सकता है? जहाँ तक तुम लोगों का प्रश्न है, तुम्हारी इस आज़ादी से कभी मुठभेड़ नहीं हुई इसलिए अपनी गुलामी तुम्हे कभी नाग़वार नहीं लगेगी।'' अर्थात् बार बार यूँ लौट कर आना महज़ एक निरर्थक कर्म है। किस्सागो की टिप्पणी है कि ''उसकी पुकार थी, भूगोल और राजनीति की सभी रुकावटें टूट जाएँ। फिर भी इस सनातन संसार में जन्मभूमि और भाषा की मिर्च उसे परेशान कर ही रही थी।'' वह सोमदत्त के निरर्थकता के नाटक के पीछे की असलियत को पहचानता है। वह निजी महत्वाकांक्षा को छिपाने वाला ढकोसला है- ''सोमदत्त इसलिये वापस हुआ था कि उसे पुनः याद किया जाने लगे और मातृभूमि में अपनी पताका एक बार फिर से फहराकर फिर कुछ समय के लिये तसल्ली के साथ प्रवासी हो सके। अपने इस करतब के लिये वह कई बार आना जाना कर चुका था।''

मुक्ति की आकांक्षा के बावजूद बन्धन बाकी ही रहते हैं क्योंकि वे अस्तित्व का पर्याय हैं। मनोहर के भीतर भी कोई ऐसे अभी तक भी बँधे हुए रेशे बाकी ही हैं। विदेश के लिये प्रस्थान करते हुए किस्सागो को बम्बई तक साथ ले जाता है। विदा का दृश्य किस्सागो इन शब्दों में दर्ज करता है- ''उसका शरीर बहुत धीरे धीरे, दबोचे हुए आँसुओं की तरह हिल रहा था। लेकिन अपनी विकास-यात्रा के लिये, वह कड़ाई के साथ जहाज पर चढ़ा।''

मनुष्य के अस्तित्व से स्वतंत्र और निरपेक्ष स्वतःसाध्य विकास पर एक करुण व्यंग्य इस दृश्य में ध्वनित होता है। स्वयं अपने सुख और लगाव के विरुद्ध ''कड़ाई और सख्ती से'' के साथ खड़े होना इस विकास यात्रा के लिये जरूरी है, क्योंकि मुक्त होना जरूरी है। यह ''मनुष्य के लिये विकास'' के स्थान पर ''विकास के लिये मनुष्य'' का स्थानान्तरण है। इस क्षण पर किस्सागों की प्रतिक्रिया है, ''यद्यपि इस समय मेरी सामाजिक चेतना और मेरी कठोरताएँ मेरे पास नहीं थी, फिर भी मैने सोचा सूअर और कुत्तों का देश मनोहर को अब धुँधला लग रहा होगा।''

'अनुभव' - त्रयी का सम्पूरक बिन्दु

'बहिर्गमन' की संवेदना को 'घण्टा' के कथ्य का अगला विकास कहा जा सकता है। 'घण्टा' में किस्सागो कुन्दन सरकार की दुनिया में थोड़ी देर के पर्यटन के बाद वापस पेट्रोला का रुख करता है। 'बहिर्गमन' का किस्सागो मनोहर की दुनिया में सीमान्तवासी और साक्षी की हैसियत से मौजूद है। वह कोई विद्रोही क्रान्तिधर्मी व्यक्ति नहीं है क्योंकि उसकी मजबूरियाँ हैं। अपने बारे में वह बताता है कि ''मुझे नौकरी करनी थी, बच्चे पालने थे और थका देने वाले इन टिटम्मों के साथ साथ एक अटूट आदमी की परीक्षाएँ भी देनी थी।'' वह अपनी जगह-जमीन और अपने लोगों को प्यार करता है, अपनी सामाजिक चेतना और कठोरताओं को बरकारार रखते हुए वह खुद को पुख्ता आदमी साबित करता है लेकिन एक निजी और व्यक्तिगत पैमाने पर ही। अपनी सामाजिक चेतना और कठोरता की कसौटी पर वह मनोहर और सोमदत्त के संसार को कसता और अस्वीकृत करता है।

त्रयी की तीसरी और आखिरी कहानी 'अनुभव' में एक पुख्ता आदमी के चुनाव और निर्णय का बयान है। इस कहानी का किस्सागो गर्मी के मौसम में लम्बे अर्से के बाद अपने पुराने शहर लौटा है और उसके बदलावों में अपने छूटे हुए शहर को तलाश रहा है। 'घण्टा' के कुन्दन सरकार और 'बहिर्गमन' के मनोहर सरीखों की दुनिया में उसको भटकाने के बाद अन्त में कहानी उसको अपने घर के पास कुम्हारों के मुहल्ले में ले जाती है जहाँ से गुज़र कर घर पहुँचा जाता है। वहाँ वह देखता है ''सड़क के किनारे, कोठरियों के बाहर सोने वालों की कतारें थी। एक कतार सोने वालों की उस नल से भी निकली थी जिसमें सुबह पानी आने वाला था। ये अधिकांश बच्चे बच्चियाँ थे। हाथ-गाड़ियों पर दिनभर सामान बेचने वालों ने अपनी गाड़ियों को रात में खाट बना लिया था। दूर तक फूटपाथ ऐसा लगता था जैसे दुर्घटना के बाद अस्त-व्यस्त लाशें पड़ी हो।''

यह दृश्य उसे झकझोर देता है। रोज का देखा हुआ दृश्य आज उसका काबू नष्ट कर देता है, उसका सीना भरभरा उठता है, वह सिसकने लगता है, उसका मन फूट फूट कर रोने को होता है। वह खुद अपने आप को पुकारता, धिक्कारता, अपने गालों पर तमाचे जड़ता है - ''ये देखो, ये असली शहर है। असली हिन्दुस्तान, इनके लिये तुम्हारा दिल हमेशा क्यों नहीं रोता है।'' उसने अपने शहर तक, घर तक पहुँचने का रास्ता ढूँढ लिया है।

कहा जा चुका है कि सत्तर के दशक में नकारोन्मुख मुद्रा उस चरम तक जा पहुँची थी जहाँ से वापसी के सिवाय कोई चारा नहीं था। यह कथात्रयी इसी वापसी का संकेत है लेकिन 'अनुभव' ज्ञानरंजन की आखिरी कहानी भी साबित हुई।

9.5 ज्ञानरंजन की कथा-भाषा

कथात्मक गद्य की व्यंजनात्मक क्षमता का अधिकतम विस्तार ज्ञानरंजन की अपनी विशिष्टता है। बयान की सादगी और सरलता पर जोर देने वाले आलोचकों ने ऐसा भी माना है कि ज्ञानरंजन की यही विशिष्टता उनकी सीमा भी है। चुहलभरी भाषा में चुस्तबयानी का चस्का कई बार लेखक के रास्ते की बाधा भी बन जाता है। यह तेवर हमेशा, शुरू से आखीर तक साधे रह पाना आसान नहीं, संभव भी नहीं। और लेखक को अपने आप में इससे कम कुछ मंजूर भी नहीं। ज्ञानरंजन का लिखना इतनी जल्दी बन्द हो जाने का शायद यह भी एक कारण है।

लेकिन इसी तर्क का एक अन्य पहलू है। कम लिख कर भी ज्ञानरंजन यदि अपनी पीढ़ी में अप्रतिम रह सके है तो मान लेना चाहिये कि अधिक लिखना बेहतर लिखने का पर्याय नहीं है।

मार करती भाषा इन कहानियों की रचनात्मक अनिवार्यता है। मोहभंग का जवाब अपनी अटूट आस्था से देनेवाली ये कहानियाँ उन पात्रों, मूल्यों और जीवन पद्धति पर प्रहार से अपनी चुस्ती और चुहल का अर्जन करती हैं जिनके विषय में किस्सागो कहता है कि ''ये जीवन की अटूट शृंखला को तोड़ने की घात में लगे हुए हैं।''

अटूट शृंखला अर्थात ऐसे कुछ मूल्य जो प्रश्नों से परे और सनातन हैं, जीवन में परम्परा का पर्याय बनाकर अर्जित होने जरूरी हैं। उन्हें तोड़ने का मतलब जीवन की बुनियाद को, जड़ों को उच्छिन्न करना है।

कहानी के विश्लेषण में रेखांकित अनेक उद्धरणों में आप ने भाषा की सूत्रात्मकता, चित्रात्मकता और गद्य की बहुपरतीय अर्थवत्ता से सृजित होने वाली काव्यात्मकता को देखा है। विश्वनाथ त्रिपाठी ने इसे चौंकाने वाली भाषा कहा है। लेकिन इसी भाषा की वजह से यह संभव हुआ है कि कहानी बुद्धिजीवी पात्रों की निजी व्यक्तिगत ज़िन्दगी के बयान को उनके समुदाय यानी बुद्धिजीवी समुदाय का किस्सा और समुदाय के किस्से को आज की भूमण्डलीय दुनिया में पूरे देश के मौजूदा हालात का बयान बनाने में सफल हुई है।

उदाहरण के लिये सोमदत्त के विषय में ये विवरण - ''उसका कोई घर नहीं था। उसके पास केवल पासपोर्ट और वीसा के बन्धन थे। वह कहीं भी बो सकता था, कहीं भी उग सकता था, कहीं भी काट सकता था।''

9.6 सारांश

1960 से 75 तक का डेढ़ दशक नयी कहानी का दूसरा दौर है। ज्ञानरंजन इसके प्रमुख रचनाकारों और सूत्रधारों में से एक हैं। इस पीढ़ी ने नयी कहानी की नकार-मुद्रा को चरम-सीमा तक पहुँचाने के बाद पुनः जड़ों की ओर वापसी की यात्रा शुरू की क्योंकि चरम सीमा के बाद कोई गन्तव्य शेष नहीं रहता। इस दिशा की ओर मोड़ने और मुड़ने में ज्ञानरंजन ने पहल की। शून्य और नकार जीवन का कोई स्थायी आधार नहीं बन सकते। अतः साहित्य में भी स्थायी मूल्यों की जगह नहीं ले सकते। शून्य में से भी निचुड़ कर, स्थायी बन कर बचा रह जाने वाला मूल्य अपनी असलियत को पहचानना और अपनी स्वाभाविकता को बचाए रखना है क्योंकि इसी तरह वास्तविकता और प्रामाणिकता का अर्जन होता है, मूल्यों को भी स्थायी, प्रामाणिक और वास्तविक बनाया जा सकता है। कोरे विवेक और कोरे अनुभव की प्रतिपक्षता की बजाय अनुभव और विवेक को एक दूसरे से जोड़ना और परस्पर पूरक बनाना इसका स्वरूप है। ज्ञानरंजन ने अपनी कहानियों में, विशेषकर त्रयी में, यह काम परस्पर विरोधी संसारों की टकराहट और रगड़ से सम्पन्न किया है। इसमें उनकी भाषा ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

उनकी कहानियों में भाषा की भूमिका महत्वपूर्ण है क्योंकि उनकी वृत्तान्त-शैली घटनाक्रम का स्थानापन्न बन जाती है। सूत्र-वाक्यों में अनेक परतीय अर्थवत्ता समाई हुई है और ध्यानपूर्वक पढ़ने की माँग करती है। घटना के स्तर पर कुछ भी घटित न होने के बावजूद क्षण भर को भी ऐसा महसूस नहीं होता कि कुछ हो नहीं रहा है। भाषा व्यंजना को उसकी अधिकतम सीमाओं तक फैलाती है। वह लेखन-कला में रचनात्मक अदायगी का पक्ष है

इसलिये मूल्यवान है। ज्ञानरंजन ने अदायगी की इस क्षमता का विस्तार किया है। वे कम लिखने के बावजूद नयी कहानी के न केवल दूसरे दौर बल्कि अब तक के भी सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचनाकारों में एक हैं।

9.7 अभ्यास

1. ज्ञानरंजन की कहानी 'बहिर्गमन' की अन्तर्वस्तु को स्पष्ट कीजिए।
2. 'ज्ञानरंजन की कहानियों में किस्सागो शैली का सशक्त प्रयोग है।' इस कथन को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
3. कहानी लेखन के क्षेत्र में ज्ञानरंजन के योगदान पर प्रकाश डालिए।
4. 'ज्ञानरंजन की कथा-भाषा' पर टिप्पणी लिखिए।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 10 गौरैया : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्‌देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 नई कहानी के बाद का कथा-समय

10.3 रवीन्द्र कालिया की कहानियाँ

10.4 रवीन्द्र कालिया : कथ्य और शिल्प के स्तर पर नए प्रयोग

10.5 रवीन्द्र कालिया की भाषा-शैली

10.6 'गौरैया' : पाठ-बोध और प्रक्रिया

10.7 सारांश

10.8 अभ्यास

10.0 उद्‌देश्य

इस इकाई में आप समकालीन कहानी के महत्वपूर्ण कहानीकार रवीन्द्र कालिया से परिचित होंगे जो सातवें दशक के प्रारंभ से अद्यतन निरंतर श्रेष्ठ कथा-लेखन में प्रवृत्त रहे हैं। इनकी सशक्त कहानी 'गौरैया' आपके पाठ्यक्रम में निर्धारित है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- नई कहानी और समकालीन कहानी की संवेदना के मुख्य अंतर का परिचय प्राप्त कर सकेंगे/सकेंगी।
- समकालीन कहानी और रवीन्द्र कालिया के कथा-साहित्य से परिचित होंगे/होंगी।
- 'गौरैया' कहानी के माध्यम से स्वातंत्र्योत्तर भारतीय सामाजिक परिवेश में निरंतर सिर उठाती सांप्रदायिकता की विकट समस्या को जान सकेंगे/सकेंगी कि हिंदी कथा-साहित्य, विशेषतः कहानी, निरंतर किस प्रकार उसका प्रतिरोधी स्वर उपस्थित करती रही है।
- 'गौरैया' के माध्यम से आप जान सकेंगे/सकेंगी कि सांप्रदायिकता की समस्या पर रवीन्द्र कालिया किस तरह के विचार रखते हैं।
- सांप्रदायिकता के विषैले माहौल में सामान्य जन की क्या भूमिका हो सकती है, इसके लिए कहानी क्या संकेत छोड़ती है, इसे आप समझ सकेंगे/सकेंगी।

10.1 प्रस्तावना

रवीन्द्र कालिया का कहानी में पर्दापण तब हुआ जब 'नयी कहानी' की छवि धूमिल पड़ती जा रही थी, नयी कहानी का यथार्थ जीवन-यथार्थ से मेल नहीं खा रहा था, कहानियों का रोमानी बोध जीवन के खुरदरे यथार्थ की ज़मीन से मेल नहीं खा रहा था और न वह स्थितियों के सामने टिक पाने में समर्थ था। यही कारण था कि 1962-65 ई० तक आते-आते ज्ञानरंजन, रवीन्द्र कालिया, दूधनाथ सिंह, गिरिराज किशोर, काशीनाथ सिंह, गंगा प्रसाद विमल, परेश, जगदीश चतुर्वेदी, महेन्द्र भल्ला, सुधा अरोड़ा, गोविन्द मिश्र, महीप सिंह, आदि अनेक कथाकारों की एक पूरी की पूरी पीढ़ी नयी कहानी में प्रचलित मुहावरे को तोड़ कर अपनी नयी लीक बना रही थी। रवीन्द्र कालिया इनमें से एक प्रमुख नाम

है। नयी कहानी से अलग अपना मुहावरा गढ रही इस कहानी को बहुत देर तक 'साठोत्तरी कहानी' का अभिधान दिया गया तथा अनेक कथा आंदोलनों, यथा 'अकहानी', 'सचेतन कहानी', 'सहज कहानी', 'समांतर कहानी' आदि-आदि नामों से भी पुकारा गया किंतु आज नयी कहानी के बाद के कथा-समय के लिए 'समकालीन कहानी' ही एक सर्वमान्य पद प्रचलन में है।

यहाँ यह भी रेखांकित करना आवश्यक है कि 'साठोत्तरी कहानी' या 'साठोत्तरी कविता' नाम गतानुगतिक रूप में या कहें होड़ाहोड़ी में ही चल पड़ा। वास्तव में सन् 1960 ई॰ कोई ऐसी काल-विभाजक रेखा नहीं है जिसमें इस महादेश के समाजार्थिक और राजनीतिक परिवेश में कुछ नया घटित हुआ हो। साहित्य अपनी युगीन परिस्थितियों से परिचालित होता है, हमारे परिवेश में बहुत सारे परिवर्तन 1962-64-65 ई॰ के मध्य घटित होते हैं। इस समयावधि में हमारे देश में राजनीतिक तथा समाजार्थिक दृष्टि से बड़ी उथल-पुथल रही। 1962 ई॰ में चीन ने हमारी सीमाओं को रौंद कर 'हिंदी चीनी भाई-भाई' के नारों तथा अनेक संधियों-समझौतों को धता बताते हुए जवाहरलाल नेहरु के अन्तरराष्ट्रीय शांति कपोतों के प्रयासों को निस्सार साबित कर दिया। नेहरू इस आघात को बहुत देर तक सम्भाल नहीं पाए और 1964 ई॰ में उनका निधन हो गया। उनके निधन के साथ ही भारतीय इतिहास के एक युग का अवसान होता है। नेहरू जी के निधन को अभी एक ही वर्ष हुआ था कि 1965 ई॰ में पाकिस्तान ने हम पर युद्ध थोप दिया किंतु 1965 ई॰ के युद्ध की एक बड़ी भारी उपलब्धि यह हुई कि युद्ध में प्राप्त विजय ने भारतीय मानस को एक जुझारूपन की मुद्रा दे दी, 1965 ई॰ के बाद के समय में, जिसे हम समकालीन साहित्य का समय कहते हैं पूरे भारतीय साहित्य में एक जुझारू मुद्रा बड़ी तीव्रता से प्रकाशित होती है। 1965 ई॰ के भारत-पाक युद्ध के बाद देश में बड़ी विषम आर्थिक स्थितियाँ आईं। भयंकर सूखा और विभिन्न स्थानों पर अकाल की स्थितियाँ, मुद्रा-स्फीति और मुद्रा अवमूल्यन से उत्पन्न संकट, विकट महँगाई, खाद्यान्नों का भारी संकट और इस संबंध में देश की परमुखापेक्षिता, जीवन जीने की छोटी-छोटी आवश्यकताओं की संपूर्ति की क़िल्लत, जिसके चलते राशनिंग व्यवस्था, फिर कपड़े और राशन के लिए लम्बी-लम्बी क़तारें, इन क़तारों में खड़े लोगों की मारा-मारी, छीना-झपटी, साथ ही शिक्षित युवकों की बढ़ती बेरोज़गारी और उससे उत्पन्न जनाक्रोश !! इन्हीं स्थितियों में देश में वामपंथी चिंतन को बढ़ावा मिला और नक्सलवाद का उदय भी '62-63 ई॰ के वर्षों से तेज़ी पाता चला गया। नयी कहानी जीवन की जिन स्थितियों को परिकल्पित कर रही थी, वे जीवन की इन विषम स्थितियों से मेल नहीं खा रही थीं। परिणामस्वरूप नयी कहानी के प्रचलित मुहावरे से अलग अपनी कहानी का स्वरूप गढ़ने के लिए एक पूरी की पूरी पीढ़ी विद्रोही-सी मुद्रा में आ खड़ी हुई। 'नयी कहानी' से समकालीन कहानी की संवेदना का यही प्रमुख प्रस्थान बिन्दु है। इस पीढ़ी ने किस प्रकार नयी कहानी के प्रचलित मुहावरे का विरोध किया, रवीन्द्र कालिया इसे इस रूप में शब्दबद्ध करते हैं, "मैंने और मेरी पीढ़ी के तमाम अन्य रचनाकारों ने ऐसी किशोर सुलभ मूर्खताओं को खारिज ही नहीं किया, इसे उपहास के रूप में ग्रहण किया। हम लोगों ने अपने नए मुहावरे तलाश किए। आकस्मिक नहीं है कि मेरी और ज्ञान की कहानियों में व्यंग्य का पुट बढ़ता गया। यह व्यंग्य अपमानित नहीं, लज्जित करता था।" इस आधारभूमि पर खड़े हो कर जो परिवर्तन नयी कथा-पीढ़ी ने अपनी कहानियों में किए, उसका जायज़ा कालिया इस प्रकार लेते हैं, "....इस एकरसता (नयी कहानी की) से मुक्ति पाने के लिए साठोत्तरी पीढ़ी के तमाम रचनाकारों ने भावबोध, भाषा और संवेदना के स्तर पर जर्बदस्त संघर्ष किया था। इस कालखंड में लिखी हम लोगों की कहानियों में कथ्य और शिल्प के स्तर पर आये परिवर्तनों को लक्षित किया जा सकता है।" इस प्रकार समकालीन कथाकारों की पीढ़ी रुमानियत में न जीती हुई स्थितियों से सीधे-सीधे टकराती है। यह कहानी में नयी कहानी

के छायावादी भावबोध या कहें 'छायावादी रोमान' से मुक्ति है। यहाँ आ कर कहानी में यथार्थ-चित्रण की अवधारणा और मुहावरा पूरी तरह बदला हुआ है। यहाँ आ कर कहानी का यथार्थ जीवन के किसी क्षेत्र विशेष में ही आ कर नहीं सिमट जाता अपितु जीवन को उसके पूर्ण विराटत्व में स्वीकार कर अनछुए प्रसंगों, स्थितियों को पूरी ईमानदारी और गहराई से अभिव्यक्त करने की पूरी अकुलाहट है। नयी कहानी के केंद्र में मध्य वर्ग था, यहाँ आ कर सामान्य मनुष्य अपनी पूरी समस्याओं के साथ चित्रित हुआ है। सामान्य आदमी की ज़िंदगी में जीवन जीने की विषम, भयावह आर्थिक स्थितियाँ, औद्योगीकरण और तकनीक के विकास से उत्पन्न विभिन्न समस्याएँ, पूँजीवादी व्यवस्था के त्रासदायी परिणाम, जीवन में परंपरा और मूल्यों की पुर्नपरिभाषा, व्यक्ति के जीवन में व्याप्त गयी निराशा, भ्रष्ट तंत्र के बीच जीता मनुष्य, नयी जीवन स्थितियों में दांपत्य का बदलता स्वरूप और समस्याएँ, पारिवारिक सम्बन्धों, रिश्तों-नातों के नये बनते समीकरण, नौकरीपेशा नारी का नया जगत और उस जगत की समस्याएँ, युवा आक्रोश, छात्र अनुशासनहीनता आदि, आदि का बड़ा सूक्ष्म चित्रण इस समकालीन कहानी की महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं। कथ्य के अनुरूप उनकी भाषा की संवाद और तराश भी पूरी तरह बदली हुई है।

10.2 नई कहानी के बाद का कथा-समय

जब नयी कहानी आत्मानुभव के संसार की सीमा में 'अनुभूति की प्रामाणिकता' के नारे को पीटती हुई हाँफ कर लगभग चुकने की स्थिति में आ गयी थी तो उस सीमित अनुभव-वृत्त की सँकरी गलियों में भटकती कहानी को सामाजिक सरोकारों के राजपथ पर ला खड़ा करने का कार्य जिन कथाकारों ने किया, उनमें प्रखरतम स्वरों में से एक स्वर रवीन्द्र कालिया का था। रवीन्द्र कालिया ने अपनी कहानियों में कथ्य और शिल्प दोनों स्तरों पर एक अभिनव कथा-संवेदना का सृजन किया।

1 अप्रैल, 1939 को जालन्धर (पंजाब) में जन्मे रवीन्द्र कालिया की शिक्षा कपूरथला और जालंधर में हुई। कुछ समय तक गवर्नमेंट कॉलिज, कपूरथला और दयानन्द डिग्री कॉलिज, हिसार में अध्यापन करने के पश्चात् आपने पत्रकारिता और संपादन को ही अपना उद्देश्य बना लिया। केन्द्रीय हिंदी निदेशालय की नौकरी के पश्चात् आप 'धर्मयुग' जैसी प्रतिष्ठित पत्रिका के संपादन विभाग से जुड़े रहे। बम्बई छोड़ने के पश्चात् इलाहाबाद उनका मुख्य कार्य-स्थल रहा। कुछ समय पश्चात् आप 'वागर्थ' पत्रिका के संपादक हो कर कोलकाता आ गए और उसके कुछ समय बाद ही भारतीय ज्ञानपीठ जैसे प्रतिष्ठित प्रकाशन संस्थान के निदेशक और उनकी पत्रिका 'नया ज्ञानोदय' के संपादक के रूप में कार्यरत रह कर साहित्य प्रकाशन, संवर्द्धन और नयी रचनाशीलता को एक विराट मंच देने का महनीय कार्य किया। 'वागर्थ' और 'नया ज्ञानोदय' के 'नवलेखन,' युवा लेखन विशेषांकों की श्रृंखला से उन्होंने हिंदी में कवियों और कहानीकारों की ऐसी पौध लगायी है जिनमें से अनेक प्रतिष्ठा प्राप्त कर साहित्य जगत में अपना विशिष्ट स्थान बना चुके हैं। संपादन की दृष्टि से उन्होंने 'वर्तमान साहित्य' के दो कहानी महाविशेषांकों - महाविशेषांक - 1 (अप्रैल 1991 ई॰) तथा महाविशेषांक - 2 (मई 1991 ई॰) का भी महत्वपूर्ण कार्य किया था जो आज तक कहानी के पाठकों और अध्येताओं की स्मृति में बने हुए हैं।

'नौ साल छोटी पत्नी', 'सत्ताईस साल की उम्र तक', 'ग़रीबी हटाओ', 'चकैया नीम', 'ज़रा-सी रौशनी', 'गली कूचे', 'रवीन्द्र कालिया की कहानियाँ' आदि रवीन्द्र कालिया के प्रसिद्ध कहानी-संकलन हैं। 'खुदा सही सलामत है', 'ए॰ बी॰ सी॰ डी॰' तथा '17 रानडे रोड' इनके चर्चित उपन्यास हैं। संस्मरण विधा को भी इन्होंने समृद्धि प्रदान की है और 'ग़ालिब छुटी शराब' इनकी इस विधा की मील का पत्थर कृति है जो हिंदी गद्य को भी अभिनव समृद्धि प्रदान करती है।

10.3 रवीन्द्र कालिया की कहानियाँ

नयी कहानी के यथार्थ-चित्रण के मुहावरे से अलग समकालीन कहानी जिस रूप में अपना नया मुहावरा और तेवर गढ़ती है, रवीन्द्र कालिया की कहानियाँ उससे पूरी तरह जुड़ती हैं या कहें उनकी कहानियाँ इस नयी कथा-धारा की निर्मिति में अपना महत्त्वपूर्ण योग देती हैं। उनकी कहानियों की आधारभूमि और धारदार प्रतिरोधी स्वर का परिचय उनके उस समय के इस कथन में मिलता है, "आज कहानी बयान करने के लिए नहीं लिखी जा रही है, वर्तमान से भिड़ने के लिए लिखी जा रही है।" वर्तमान से यह 'भिड़ना' ही उनकी कहानी की तेज़-तर्रार बयानी का कारण बनता है। अपने परिवेश की विसंगतियों से लड़ने के लिए उनकी कहानियाँ स्वतः ही एक नये शैल्पिक विन्यास में ढलती चली जाती हैं, वे और उनके अन्य समकालीन सशक्त कथाकार नयी कहानी के प्रमुख नारे 'अनुभूति की प्रामाणिकता और तीव्रता' के स्थान पर 'मित-कथन' को अधिमान देते हैं। पहले के लेखक से अपनी अलग पहचान इस रूप में स्थापित करते हुए वे बल देते हैं कि "पहले में लेखक की एक अतिरिक्त सत्ता थी, इसीलिए वह 'रचना करता था' आज का लेखक रचना को झेलता है, क्योंकि हर जगह भागीदार की हैसियत से वह विद्यमान रहता है।" अपने जिये हुए जीवन-यथार्थ को कहानी में ला कर वह उन्हें युग और परिवेश के वृहत्तर ज्वलंत प्रश्नों से जोड़ता है। जीवन-यथार्थ की ये स्थितियाँ लेखकीय सोच पर दस्तक देती हुई, उसे प्रश्नाकुल बनाती हैं। इस प्रकार समकालीन कहानी में यथार्थ चित्रण में लेखकीय अन्तर्दृष्टि नितांत आवश्यक शर्त बन जाती है। वस्तुतः रवीन्द्र कालिया अपनी इसी आधारभूमि पर खड़े हो कर निरंतर कहानियाँ लिखते रहे हैं, अद्यतन उनकी कहानियाँ उसी ताज़गी की प्रतीति देती हैं।

रवीन्द्र कालिया ने जब 'नयी कहानी' से अलग अपना प्रस्थान बिन्दु निश्चित किया तो उन्होंने जो कहानियाँ लिखीं, उनमें 'नौ साल छोटी पत्नी' और 'काला रजिस्टर' विशेष चर्चित हुईं और उन्होंने समकालीन कहानी-दौर में पूरी तरह प्रतिष्ठित कर दिया। पति-पत्नी सम्बन्धों के बीच के गोपनीय को दिखाने के जो प्रयास कहानी की तृप्ता करती है, उन्हें भली-भाँति जानते हुए भी कुशल अनजान-सा बना रहने का प्रयत्न करता है। कुशल भी सुब्बी के प्रति आकर्षित है, इस स्थिति को तृप्ता क्या कोई भी पत्नी स्वीकार नहीं कर सकती। कहानीकार ने बहुत सूक्ष्मता से पति-पत्नी के बीच बच-बच कर चलने की इस मनोस्थिति को कुशल अभिव्यक्ति दी है, "सुब्बी बहुत खराब लड़की है," तृप्ता ने कहा। "लड़कियाँ सभी खराब होती हैं," कुशल ने कहा। वह जानता था, तृप्ता की नज़रों में सुब्बी क्यों खराब है।" पति-पत्नी सम्बन्धों पर इस खुली दृष्टि से विचार करने वाली यह बारीक कहानी 'नयी कहानी' के दांपत्य चित्रण से बिलकुल अलग ज़मीन पर खड़ी है। न केवल वैयक्तिक सम्बन्धों पर अपितु जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी रवीन्द्र कालिया इसी बेबाकी से प्रवेश करते हैं जिसका उदाहरण उनकी उसी दौर की 'काला रजिस्टर' कहानी है जो दफ्तरी व्यवस्था को उघाड़ती हुई बॉस की दबंगई को खुली चुनौती देती है। कन्हैयालाल नंदन ने अपने आत्मकथात्मक संस्मरणों में 'काला रजिस्टर' कहानी की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि यह कहानी 'धर्मयुग' कार्यालय और वहाँ के प्रसिद्ध संपादक डॉ॰ धर्मवीर भारती के वर्चस्व तथा मनमाने व्यवहार, तानाशाही को किस प्रकार खुली चुनौती देती है। बहुत खिलंदड़ी शैली में, जो कालिया के कहानीकार की निजता है, भेंगा, मोटा, उप, मँझोले क़द, छाया, छोटा, आदि पात्रों के माध्यम से कहानीकार ने उस दमघोंटू वातावरण का चित्रण किया है, "मैंने कई द़तरों में काम किया था, मगर सुबह-सुबह इतने उदास और डरे हुए चेहरे उसने नहीं देखे थे। उसे लगता हॉल में किसी का शव रखा है और तमाम लोग मातमपुर्सी के लिए इकट्ठे हुए हैं।" दफ्तर के केबिन में जब मुख्य संपादक के सामने पेशी होती तो उसे लोगों ने 'पुण्य तिथि' का नाम दे रखा

था, "यह एक खुला रहस्य था कि पुण्य तिथि पर लोग घर से हनुमान चालीसा या गायत्री मंत्र पढ़ कर आते थे।" यह वही शैली है जिसका ज़िक्र ऊपर कालिया ने कहानी में 'मित कथन' के रूप में किया था। अपने इसी रंग में कालिया कहानी को कथ्य और शिल्प स्तर पर एक नया तेवर प्रदान करते चले आ रहे हैं।

10.4 रवीन्द्र कालिया : कथ्य और शिल्प के स्तर पर नए प्रयोग

रवीन्द्र कालिया की कहानियों का फलक (कैनवास) बड़ा व्यापक है। दफ्तरी व्यवस्था ('काला रजिस्टर'), दांपत्य ('नौ साल छोटी पत्नी', 'लाल तिकोन') तथा प्रेम की विभिन्न स्थितियाँ ('हथकड़ी', 'संदल और सिन्थाल', 'दौ सौ ग्राम प्रेम-पत्र') पूरबली प्रीति की भीनी सुगन्ध ('मुहब्बत'), साहित्यकारों का संघर्ष ('पुस्तक पुराण'), ग़रीबी का दंश ('बोगेनविलिया', 'ग़रीबी हटाओ', 'सुन्दरी'), सांप्रदायिकता जैसी समस्याओं पर कहानी लिख कर यह सिद्ध किया है कि उनका सजग कथाकार अपने परिवेश की समस्याओं पर एक जागरूक दृष्टि रखता है और उन स्थितियों में सार्थक हस्तक्षेप करता है। जब समकालीन कहानी नयी कहानी से विद्रोह कर अलग रूप ग्रहण कर रही थी तो उस समय 'अकहानी' का आंदोलन भी आया। मनुष्य के प्रकृत काम सम्बन्धों का स्पष्ट स्वीकार और देह-धर्म की ईमानदार स्वीकृति इस कहानी का मुख्य स्वर था। रवीन्द्र कालिया भी कुछ देर 'अकहानी' से जुड़े रहे और उस समय उन्होंने 'दौ सौ ग्राम प्रेम पत्र', 'कोज़ी कार्नर', 'प्रेम', 'अकहानी', 'सबसे छोटी तस्वीर' जैसी कहानियाँ लिखीं जिन्हें सीधे-सीधे यौन-सम्बन्धों की कहानियाँ कहा जा सकता है। कभी अपने शीर्षकों की नवीनता ('दौ सौ ग्राम प्रेम पत्र') तो कभी कथ्य की ईमानदारी से ये कहानियाँ प्रभावित करती हैं। वस्तुतः ये कहानियाँ कालिया की कहानी की प्रकृत भूमि नहीं रही है, वे आंदोलन के उत्साह में लिखी गयी हैं। उनकी बेहतरीन कहानियाँ उनके प्रौढ़ काल में आयी हैं जिनमें ग़रीबी, दफ्तरी भ्रष्टाचार, सांप्रदायिकता और विगत प्रेम के मधुर अहसास जैसे विषयों का अंकन बड़ी सूक्ष्मता और गहराई से हुआ है।

रवीन्द्र कालिया अपनी कहानियों में व्यंग्य की मारक क्षमता का भरपूर प्रयोग करते हैं, किंतु उनकी भाषा-शैली का खिलंदड़ी अंदाज़ और नयी शैल्पिक युक्तियाँ उसे कहीं भी विचार बोझिल नहीं बनाते हैं। विचार यहाँ कहानी में अन्तर्धारा - 'अण्डर करेण्ट' - की तरह अनुस्यूत होता है। कहानी कला के इन सभी गुणों से भरपूर उनकी कहानियाँ 'रूप की रानी चोरों का राजा' तथा 'एक होम्योपैथिक कहानी' का उदाहरण दिया जा सकता है जिनमें उनकी कहानी-कला पूर्ण उत्कर्ष पर है। रवीन्द्र कालिया कहानी में "लेखक का सबसे बड़ा हथियार या औजार भाषा" को ही मानते हैं। वे भाषा को खिलंदड़ी स्वभाव में ढालते हुए व्यंग्य का ज़बर्दस्त प्रयोग करते हैं जो बड़े सहज रूप में विद्रूपताओं को छीलता है। इस रूप में उनके यहाँ कथ्य और उद्देश्य कथित, वर्णित नहीं होता अपितु कहानी में व्यंजित होता है। इसी रूप में 'रूप की रानी चोरों का राजा' में वे शैल्पिक दृष्टि से कथा-युक्तियों और भाषा को ले कर बड़ा ज़बर्दस्त प्रयोग करते हैं। वे कहानी के प्रारंभ से ही अपने पाठक से जो रिश्ता कायम करते हैं, जो हेल-मेल बढ़ाते हैं, वह कहानी को एक सहजबयानी तो देती ही है, पाठक को पूरी तरह सम्मोहित भी कर लेता है। कहानी के मिजाज़ से परिचित होने के लिए उसके प्रारंभ का यह दीर्घ उद्धरण देना अपेक्षित हो जाता है, "इसे संयोग ही कहा जायेगा कि कहानी अभी शुरू भी नहीं हुई और आप से रिश्ता क़ायम हो गया और अब मैं कहानी के बीच-बीच में आपसे संवाद करता रहूँगा। दरअसल टी॰वी॰ ने मेरी आदत खराब कर दी है, कोई भी कार्यक्रम निर्बाध रूप से देखने का अभ्यास नहीं रहा, आप मन लगाकर कोई धारावाहिक देख रहे हैं कि बीच में अचानक विज्ञापन अथवा प्रोमो थोप दिये जाते हैं। दर्शक अब इसके अभ्यस्त हो चुके हैं। शायद

दर्शकों को राहत देने के लिए फिल्म में 'इंटरवल' की व्यवस्था रहती है। उपन्यास को कई अध्यायों में विभाजित कर दिया जाता है, मगर कहानी एक ऐसी विधा है कि एक बार शुरू हुई तो अंत तक पहुँच कर ही दम लेती है। ज़ेहन में अचानक यह ख़्याल गुजरा कि पिक्चर के दौरान थियेटर में शायद इसीलिए मूंगफली, वेफर्स बिकते रहते हैं। आप मेरी कहानी पढ़ने जा रहे हैं, मैं आपकी सुविधा-असुविधा का ध्यान रखूँगा, आप चाहेंगे तो बीच में चाय-नाश्ते का भी प्रबंध करता रहूँगा।" कहना न होगा कि इस प्रकार का प्रबंध ा लेखक ने कहानी के बीच-बीच में अपनी उपस्थिति को प्रत्यक्ष कर किया है। पुलिस की कार्यशैली, आतंक, भ्रष्ट आचरण को नंगा करने के लिए लेखक बड़े हल्के-फुल्के अंदाज़ में बात को आगे बढ़ाता कहता है, "बहरहाल, अब जल्दी से संध्या के कपड़े बदलने का इंतज़ाम करता हूँ, क्योंकि जब तक संध्या कपड़े नहीं बदलेगी, कहानी उसकी नाईटी के आगे-पीछे ताक-झाँक करती रहेगी।" चोरी होने पर पुलिस और थाना जिस प्रकार व्यवहार करते हैं, राजनेताओं की दख़लंदाज़ी स्थितियों को और कितना पेचीदा बनाती है - इस सबका बेबाक अंदाज़ में बयान करती कहानी चिर-परिचित कथ्य को भी बिलकुल नया बना देती है और आज के विकराल समय में रहते सामान्य मनुष्य की तकलीफ़ों को सामने लाती है, सहज रूप में हमारे संवेदन तंत्र को झिंझोड़ती है। कहानीकार की दृष्टि केवल पुलिस तंत्र और व्यवस्था पर ही टिक कर नहीं रह जाती है, कई-कई कोणों से ज़िंदगी देखने के गवाक्ष कहानी में खुलते हैं। बाज़ारवाद, बाज़ार में छायी मंदी की स्थितियाँ, विज्ञापनों का मायावी तंत्र - इस सब पर भी कहानी अपनी दृष्टि देती चलती है। "आजकल बाज़ार में मंदी छायी हुई है, हर शैम्पू के साथ कुछ न कुछ फ्री मिल रहा है, जैसे साबुन के साथ एक और साबुन, तेल के साथ शैम्पू, शैम्पू के साथ कंघा, पतलून के साथ शर्ट, जूते के साथ मोजे, कटोरी के साथ चम्मच, मगर किताब के साथ कुछ मुफ्त नहीं मिलता, बुकमार्क तक नहीं।" उद्धरण का अंतिम वाक्यांश बाज़ारवाद के साथ उस स्थिति पर भी व्यंग्य करता है कि आज के उपभोक्तावादी समय में 'किताब' का महत्त्व कितना-भर रह गया है। इस प्रकार अपने वर्तमान परिवेश की ग़लाज़त पर विमर्श रचती यह एक बेजोड़ कहानी बन जाती है। होम्योपैथिक दवा के लक्षणों के आधार पर एक सुंदर-सी, भीनी-सी प्रेम की महक लिए भी कहानी रची जा सकती है, यह एक 'होम्योपैथिक कहानी' को पढ़ कर ही जाना जा सकता है। डॉक्टर और मरीज़ जिस शब्दावली में बात करते हैं, लगता है दोनों के बीच प्रेम का स्फुरण हो रहा है, दोनों एक-दूसरे के प्रति आसक्त हैं। उनके संवादों में प्रेम की सूक्ष्म, तरल अनुभूतियों में पाठक डूबता-उतराता चला जाता है किंतु उसे एक ज़ोर का झटका धीरे से कहानी के अंत में कोष्ठकों ('ब्रेकेट्स') में लिखे वाक्य से लगता है, "(जे॰ के॰ कैंट, नैश, विलियम बोरिक, सी॰ एम॰ बोगर आदि विद्वानों द्वारा वर्णित 'अर्जेण्टम निट' के लक्षणों पर आधारित)"। इस प्रकार रवीन्द्र कालिया समकालीन कहानी में अपने नये कथ्य और शिल्पगत प्रयोगों के लिए जाने जाते हैं।

समकालीन कहानी में सामान्य आदमी की ग़रीबी और अमीर-ग़रीब के बीच निरंतर बढ़ती चली जा रही खाई एक चिर-परिचित कथ्य रहा है जिसे विभिन्न कहानीकारों ने नए-नए कोणों से अभिव्यक्ति दी है। रवीन्द्र कालिया ने इस कथ्य पर तीन बहुत खूबसूरत कहानियाँ रची हैं - 'बोगेनविलिया', 'सुन्दरी' और 'ग़रीबी हटाओ'। 'बोगेनविलिया' छोटे वित्त और साधनों के व्यक्ति के पाले गए सपनों का प्रतीक बन जाती है। बड़े लोगों को नर्सरी से गुलाब, बोगेनविलिया, आदि के पौधे लाता देख कर उस निम्नवर्गीय कर्मचारी हरिचरण को भी फूलों का पौधा लाने की लालसा जगती है जो अपने वेतन वाली तारीख़ का इंतजार करता हुआ उस दिन थोड़ी-सी फ़िज़ूलख़र्ची की ऐय्याशी ज़रूर भुगत लेता है, फ़िज़ूलख़र्ची भी मात्र इतनी कि वह एक अदद पान तक ही महदूद रहती है, उसे जब वेतन मिलता है तो वह यह थोड़ी-सी फ़िज़ूलख़र्ची कर बैठता है। वह पान का शौकीन

नहीं है, "मगर पहली को कलेजा पकड़ कर एकाध बीड़ा पान खरीदने की गुस्ताख़ी ज़रूर कर बैठता है।" इस छोटे-से विवरण से कहानी के हरिचरण के माध्यम से एक पूरा निम्नवर्ग पाठक के ज़हन में छा जाता है, जो हर पहली तारीख़ के लिए अपने मन में न जाने कितनी-कितनी लालसाओं की पूर्ति का स्वप्न बुनता है किंतु इन सपनों में से एकाध ही हक़ीकत में तब्दील हो पाता है। पीले गुलाब के पौधे से जुड़ी उसकी बेटी रेणु की लालसा उसका पच्चीस रुपया दाम सुन कर ही तुरंत कुम्हला जाती है। फिर बोगेनविलिया के पौधों के दामों को ले कर हरिचरण की माली से की गयी हुज्ज़त और बीस रुपए में चेरी ब्लासम रंग की बोगेनविलिया का सौदा पटाने का वीर भाव सहज ही सामान्य मनुष्य की हसरतों और बाज़ार की त्रासदायी मार का परिचय दे देता है। बोगेनविलिया पाली हुई इच्छाओं, स्वप्नों का प्रतीक हो उठता है जिसे उसकी पत्नी बरसों से 'साध' के रूप में पाले हुए है, 'कितने का लाये हो' का प्रश्न बाज़ार के सामने मनुष्य की विवशता का पूरा चित्र अंकित कर देता है। फिर अगले दिन हरिचरण दफ्तर से लौटते हुए ट्राली से एक चार रुपए का गमला जिस रूप में खरीदता है, वह भी आर्थिक मज़बूरियों के बीच इच्छाओं के पूरा करने का बिम्ब रचता है। इतने जतन से खरीदे और लगाए गए पौधे के मुरझा जाने पर घर में जो मातम छाता है, वह बहुत देर तक पाठकीय चेतना को आक्रांत ('हांट') रखता है, "घर में उस रोज़ न खाना पका, न किसी ने खाया। सबको ऐसा महसूस हो रहा था जैसे कोई एक मेहमान एक दिन के लिए ढेर सारी खुशियाँ बाँट कर विदा हो गया हो।" पूरी कहानी मानो अन्योक्ति में ढल कर ग़रीबी में रहते एक पूरे वर्ग की व्यथा को साक्षात कर देती है। अपने कथ्य के प्रति तनिक भी मुखर ('वोकल') हुए बिना लेखक का अभिप्रेत पाठकीय संवेदन तंत्र को झंकृत करता हुआ पूरी तरह उसकी चेतना पर छा जाता है।

इसी क्रम में ग़रीबी के कथ्य पर 'सुन्दरी' और 'ग़रीबी हटाओ' बेहतरीन कहानियाँ हैं। 'सुंदरी' कहानी में एक घोड़ी है जिसका मालिक ज़हीर मिया है, वह जिस अल्पसंख्यक वर्ग से आया है, उसका पूरा ख़ाका, अपने सही इतिहास और भूगोल में, कहानी में बड़े संवेदनात्मक स्तर पर प्रस्तुत हुआ है। बढ़ते औद्योगीकरण और विकास ने घोड़े वालों की जो दुर्दशा कर दी है, उस पर एक शानदार डॉक्यूमेंटरी या फ़िल्म तो बनायी जा सकती है, बम्बई के स्लम्स की ज़िंदगी पर कितनी ही अन्तरराष्ट्रीय प्रसिद्धि की फ़िल्में बनीं, कितने ही 'बेस्ट सेलर' उपन्यास अंग्रेजी में आए किंतु उनकी ज़िंदगी पर यह एक मार्मिक कहानी है। ज़हीर मियाँ की मार खायी ज़िंदगी को बड़े कौशल से कहानी में चित्रित किया गया है। कहानी के शुरू में जब ज़हीर मियाँ सुंदरी घोड़ी के कान में फुसफुसाते हैं, "देख रही हो ज़माने की बेवफ़ाई" "स्टेशन से पैदल चल देंगे, मगर ज़हीर के ताँगे पर न बैठेंगे" तो हमें चेख़व की 'दुःख' (द 'मिज़री') का वह दृश्य याद आ जाता है जब अस्तबल में बंधे घोड़े से उसका मालिक लिपट कर अपने पुत्र की मृत्यु का समाचार सुनाता है, जिसके इस समाचार को सुनने के लिए पूरे दिन कोई मिला न था। यह दृश्य एक पूरे वर्ग की उस तक़लीफ़ से रू-ब-रू करा देता है जिसने मशीनीकरण के अभिशाप को झेला है, जिसे मशीन ने बेकारी और गुरबत के आलम में डाल दिया है। ज़हूर की बीवी की हालत का यह खौफ़ज़दा रूप लेखक इस रूप में अपनी पैनी निग़ाह से चित्रित करता है कि एक पूरे का पूरा वर्ग अपनी सारी ग़रीबी लिए सामने आ खड़ा होता है, "ज़हीर मियाँ की नज़रों के सामने बेग़म के सूखे स्तन घूम गये। अब तक नौ बच्चों को दूध पिलाया था उसने। अब तो उसका शरीर देख कर रहम आता था। लगता था, सारे का सारा दूध बच्चे पी गए थे। पिचक ही नहीं, सीने से चिपक गये थे।" फिर बड़े बेटे अमज़द का अलग होना इस पूरे वर्ग की पारिवारिक व्यवस्था से परिचित करा देता है। ज़हीर और घोड़ी के इलाज़ में सब कुछ स्वाहा हो जाना, बीवी के ज़ेवर बिक जाना, आदि के द्वारा इस निम्नवर्गीय मुस्लिम जगत का पूरा आलम चित्रित हो जाता है। सुंदरी को

जब दुबारा ताँगे में जोतने के लिए तैयार किया जा रहा है, तो उसका चित्रण रवीन्द्र कालिया ने एक प्रत्यक्षदर्शी के समान किया है, "उस रोज़ सुंदरी को दुल्हन की तरह सजाया गया, सुबह-सुबह मालिश की गयी।" फिर घर के बच्चों के उछाह का चित्रण है कि किस प्रकार घोड़ी की खिदमत में उसके ही इर्द-गिर्द मँडरा रहे थे, "जिया सुबह सुबह दो कोस चल कर मुँह अँधेरे खेत से चने के झाड़ खोद लाया था। सुंदरी ने जी-भर कर नाश्ता किया। पूरा परिवार उसकी सेवा में लगा था। नन्हा अरशद उसकी कलगी उठा लाया, जिसमें चार-छह पर ही बचे थे। बेग़म ने सुंदरी का साज़ यानी पोशाक झाड़-पोंछ कर जितना चमका सकती थी, चमका दी। एक लंबे अरसे से सुंदरी की पोशाक घर में दरी का काम दे रही थी और उसमें बच्चों के पेशाब की गंध रच-बस गयी थी। इसी साज़ पर बेग़म ने दो बहनों को जन्म दिया था और इस साज़ में उनका बचपन महकता था। ज़हीर की छोटी बेटी बचपन में ही पोलियो की जद में आ गयी थी, वह भी सिमटते हुए सुंदरी के पास आ गयी थी और टाँगों पर हाथ फेरने लगी। गर्ज़ यह कि ज़हीर का पूरा परिवार इस तरह सुंदरी की खिदमत और साज़-सिंगार में जुट गया, जैसे आज वह लाम के लिए रवाना हो ही हो।" सुंदरी को देखने आए मुहल्ले के तमाशबीनों में जो बेकारी में चोर-उचक्कों में तब्दील हुआ युवा वर्ग है, उसका भी परिचय दिया गया है। यह कहानी अल्पसंख्यक वर्ग के इस निम्नवर्गीय तबक़े की ग़रीबी को पूरी बारीकी से चित्रित कर सकी है। 'ग़रीबी हटाओ' भी इसी तर्ज़ की विशिष्ट कहानी है जिसमें एक ठठेरे मोहन के माध्यम से निम्नवर्गीय समाज की ग़रीबी बखूबी चित्रित हुई है। मोहन ठठेर की ज़िंदगी की ग़रीबी को देखने के लिए यह एक चित्र ही पर्याप्त होगा, "मोहन ठठेर निराश हो गया। पाँच रुपए पा कर उसे जो गुदगुदी हुई थी, वह उसके लौंडे ने ख़त्म कर दी। रात को उसकी बीवी लौटी तो उसने कहा, "आज तुम्हारी छुटटी। वक्त ने साथ दिया तो शाम को रोज़ तुम्हारी छुट्टी। मगर उसके बाद हफ्तों मोहन ठठेर की पत्नी की छुट्टी नहीं हुई। वह रात को देर तक खाना पकाती और उसके बाद सुईं-धागा ले कर बैठ जाती। जहाँ-जहाँ से कपड़े फटने लगते, वह देर तक रफू करती। मोहन ठठेर और उसके बच्चे नींद में ही होते कि वह फिर काम पर निकल जाती।" अपनी ग़रीबी के रोज़-रोज़ के हादसों में मोहन ठठेर हिम्मतपस्त हो जाता है और बाज़ार में चक्कर खा कर गिर जाता है, कभी न उठने के लिए। कहानी एक टीस-सी पाठक मन में छोड़ जाती है।

प्रेम और स्त्री-पुरुष सम्बन्धों पर विभिन्न कोणों से रवीन्द्र कालिया ने कहानियाँ लिखी हैं किंतु यहाँ उनकी नए रंग की हम उस कहानी 'मुहब्बत' की चर्चा करना चाहेंगे जो पूरबली प्रीति पर बहुत मार्मिक कहानी है, अतीत के सम्बन्धों, असफल प्रेम की, भीनी भीनी सुगंध में अपने पाठक को भिगोती हुई। कहानी में तीस बरस पहले के ख़त को ले कर पचास को पहुँची प्रेमिका अपनी सत्तर-पार पहुँची माँ को ले कर विदेश से भारत आने पर अपने 'भूतपूर्व' प्रेमी कपिल से मिलने पहुँचती है। यह प्रेम जितने खुले मन से बीती और रीत गयी प्रीत का खुलासा करता है, दोनों ओर के परिवारों की जानकारी में, बिना किसी अपराध-बोध के, बिना किसी सामाजिक डर की परवाह किए कि कोई क्या कहेगा, इस भय से पूरी तरह मुक्त, यह कहानी के विषय को बहुत प्रभावी बना देता है। जहाँ तीस बरस पहले की उम्र में भावुकता और शेर-ओ-शायरी से भरे एक बचकाने से मज़बून वाले पत्र को प्रेमिका के पूरे परिवार के सामने, पति को और स्वयं पति द्वारा बेटियों को सुनाया गया हो, वहाँ कोई दुराव-छिपाव कैसा !! पाप बोध कैसा !! अपराध भाव कैसा !! कपिल की पत्नी ऊपर अवश्य चली जाती है किंतु दोनों अपने प्रेम का अकुंठ भाव से स्मरण करते हैं, प्रेमिका की माँ के सामने। स्मृति-वनों में भटकते कपिल का यह कथन इस प्रीति के मधुर क्षणों को साक्षात करता है, "अरी सरोज तुम" "इतने वर्ष कहाँ थी ? मैं विश्वास नहीं कर पा रहा हूँ, तीस साल बाद तुम अचानक मेरे सामने यहाँ आ सकती हो, कहाँ गए बीच के साल ?" इन सालों को खोने का मलाल कहानी के प्रभाव में और भी अभिवृद्धि

करता है। पूरी कहानी विगत प्रेम की भीनी खुशबू से सराबोर है, अतीत को पुनः पा जाने की परितृप्ति भी है और उन क्षणों को फिर पकड़ पाने की लालसा भी। कहानी पाठक की स्मृति में बसी रह जाती है।

सांप्रदायिकता की समस्या भी रवीन्द्र कालिया के कहानीकार को आंदोलित करती है। सांप्रदायिकता के ज़नून के खिलाफ़ वे अपनी 'ज़रा सी रोशनी' और 'गौरेया' में उठाते हैं। 'ज़रा-सी रोशनी' में बड़ों के दिमाग़ों में भरी सांप्रदायिकता की विषाक्त वृत्ति को बच्चों के खेल के माध्यम से निकाला गया है। बच्चे पाकिस्तान और हिन्दुस्तान की टीम बना कर क्रिकेट का खेल जिस रूप में रचते हैं, वह बड़ों के लिए एक नसीहत बन जाता है। 'गौरैया' सांप्रदायिकता की समस्या को बहुत गहराई और सूक्ष्मता से चित्रित करने वाली एक बेहतरीन कहानी है जिसका विवेचन आगे किया जायेगा। वस्तुतः रवीन्द्र कालिया समकालीन कहानी समय से अब तक निरंतर श्रेष्ठ कहानियों की रचना करते चले आ रहे हैं।

10.5 रवीन्द्र कालिया की भाषा-शैली

रवीन्द्र कालिया और उनके समकालीनों ने कहानी में भाषा को एक बहुत जबर्दस्त हथियार मान कर अपनी भाषा को रचने में बड़े प्रभावी प्रयोग किए थे। तब से ले कर अब तक निरंतर कालिया अपनी कहानियों में भाषा के रचाव को ले कर विशेष रूप से सजग रहे हैं। आज भी उनकी भाषा विषयक चिंता इसी रूप में देखी जा सकती है, "लेखक का सबसे बड़ा हथियार भाषा ही होती है, जिसकी धार वक्त ने कुंद कर दी है, जिसे नेताओं, अभिनेताओं और मीडिया ने बहुत बेरहमी से रौंद डाला है। लगता है, ये शब्द नहीं, उनके छिलके हैं।" चुक गयी शब्दावली और पारंपरिक वाक्य-विन्यास को अपनी तरह से तोड़ कर वे शब्दों में नयी अर्थवत्ता, अर्थ-क्षमता भरने का सफल प्रयोग करते हैं। इस कथन की संपुष्टि उनकी कहानियों के कुछ उद्धरणों से की जा सकती है। सामान्य से शब्दों का विशेष संदर्भों में प्रयोग किस प्रकार कहानी की भाषा को एक ऋजु प्रवाह दे देता है, इसका उदाहरण 'रूप की रानी चोरों का राजा' का यह वाक्य है, "मटमैला-सा दिन धीरे-धीरे आँखें खोल रहा था और मुख्य सड़क पर लोगों की अम्मोदरत शुरू हो गयी थी।" इसी प्रकार इसी कहानी में पुलिस के मरियल कुत्तों को देख कर पुलिस और दप्तरी व्यवस्था पर किस प्रकार करारी चोट की गयी है, द्रष्टव्य है, "......सिपाहियों के साथ दो मरियल से कुत्ते देख कर उसे बहुत निराशा हुई। देखने से ही दोनों कुत्ते कुपोषण का शिकार लग रहे थे। उन कुत्तों को देख कर कोई भी समझदार आदमी कह सकता था कि वे कामचोर किस्म के सरकारी कर्मचारी थे। वे अपने अफ़सरों की खुशामद करना भी सीख गए थे। दोनों कुत्ते एस॰पी॰ के सामने खड़े हो कर पूँछ हिलाने लगे, वे जैसे अपने अधिकारी की पुचकार पाने के लिए मचल रहे थे।" इस प्रकार कुत्तों के माध्यम से सरकारी कर्मचारी के व्यवहार तथा आचरण का चिट्ठा भाषा में अन्तर्निहित व्यंग्य के द्वारा पेश किया गया है।" कालिया नयी शैल्पिक युक्तियों के साथ भाषा-शैली को एक खिलंदड़ी मिजाज़ देते चलते हैं, "यहाँ एक ब्रेक लेना मुनासिब होगा। आप इसे टी ब्रेक भी कह सकते हैं।" "फिर आगे बुक मार्क के बहाने विज्ञापन-संस्कृति, बाज़ार तथा बाज़ारवाद की ख़बर ली गयी है।" इसी प्रकार की कथा-युक्ति से संध्या के घर न जा कर थाने जाना, थाने से आई॰पी॰एस॰ अधिकारियों की खबर जिनमें से "इधर हिंदी कथाकारों की पाँत में कुछ आई॰पी॰एस॰ अधिकारियों के शामिल होने का धारदार व्यंग्य उनको इस विशिष्ट शैली द्वारा ही संभव हुआ है। कुछ आई॰ पी॰ एस॰, आई॰ ए॰ एस॰ अधिकारी केवल अपने

रुतबे के बल पर कविता, कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में प्रतिष्ठित हुए हैं, कहानी का व्यंग्य अपने समकाल के इस विद्रूप पर करारी चोट करता है। अपनी कहानियों के शीर्षक और कहानी के आदि तथा मध्य में पाठकों से 'राब्तः' कायम करने के गुर का भी वे भरपूर इस्तेमाल कहानी में करते हैं, 'रूप की रानी चोरों का राजा' इस दृष्टि से बड़ी प्रभावी कहानी है। कहानी में लेखकीय हस्तक्षेप की शैली तो बहुत पुरानी है, जैनेन्द्र के समय से ही इसका कहानी में प्रयोग देखा जा सकता है किंतु कालिया इस कथा-युक्ति को नया रूप देते हुए पाठक से अंतरंग वार्तालाप, में बतकही, में संलग्न हो जाते हैं और कहानी को किस्सागोई का रूप दे देते हैं। बतकही का यही अंदाज़ उनकी इस शैली में भी मिलता है कि अक्सर ही वे अपनी कहानियों में आए जीव-जन्तुओं से बातें करने लगते हैं, जैसे मुद्दत से उनसे उनका परिचय हो। 'गौरैया' कहानी में गौरैया के बच्चे से वे इस प्रकार बतियाते हैं, "तुम भी कुछ चुग लो ! तुम्हें चुगना नहीं आता ? मैंने कहा खुद खाओ और अपनी बहन को भी खिलाओ।" इस बातचीत का सिलसिला रोचक रूप में आगे बढ़ता है, पूरी शिकायतों के स्वर में, पूरे अधिकार के साथ हमदर्दी की हिदायतें देते हुए। भाषा-शैली के इस तरह के तत्त्व उनकी कहानियों को 'कहानीपन' पठनीयता का एक विशेष गुण दे कर, कहानियों को आकर्षक तथा अत्यंत पठनीय रूप प्रदान करते हैं।

10.6 'गौरैया' : पाठ-बोध और प्रक्रिया

साम्प्रदायिकता की समस्या देश की राजनीति और समाज में व्याप गयी ऐसी बीमारी है जिसका स्वरूप निरंतर विकटतर होता जा रहा है। अंग्रेज़ों की साम्राज्यवादी नीति ने हिन्दू-मुस्लिम के बीच साम्प्रदायिक वैमनस्य की ऐसी दीवार खड़ी कर दी कि देश में भाई-भाई की तरह रहते हिन्दू-मुस्लिम वर्गों की गंगा-जमुनी संस्कृति की धारा प्रदूषित हो गयी। स्वतंत्रता के समय हिंदुस्तान और पाकिस्तान के रूप में दो राष्ट्रों का गठन भी इस समस्या का हल नहीं निकाल पाया। आज़ादी के बाद देश में जब-तब सांप्रदायिक दंगे होते रहे जिसका विकरालतम रूप बाबरी मस्जिद ध्वंस और गुजरात के नर-संहार के रूप में सामने आया। स्वतंत्रता के बाद के वर्षों से निरंतर साहित्यकार इस समस्या से जूझते रहे और इंसानी भाईचारे पर एक से एक सशक्त और मार्मिक कहानियाँ हिंदी, उर्दू, पंजाबी, बांग्ला आदि भाषाओं के कथाकारों द्वारा रची गयीं - ये ही भाषा-भाषी मुख्यतः सांप्रदायिकता की आँच से झुलसते रहे। कृष्णा सोबती की 'सिक्का बदल गया', भीष्म साहनी की 'अमृतसर आ गया', मोहन राकेश की 'मलबे का मालिक', कमलेश्वर की 'कितने पाकिस्तान', मण्टो की 'टोबा टेक सिंह', महिन्दर सिंह सरना की 'हीरा मृग' (पंजाबी), आदि इस कथ्य पर बड़ी मार्मिक कहानियाँ हैं जिनमें बताया गया है कि हिंदू-मुस्लिम के बीच की दीवारें राजनीतिक परिस्थितियों की देन है, सामान्य आदमी ने इन दीवारों को हमेशा बेमानी माना है। सभी भाषा के फलक के साधकों ने हिन्दू-मुस्लिम संप्रदाय के सामान्य आदमियों के भाईचारे, सौहार्द को रेखांकित कर इस दीवार को तोड़ने में बड़ी सार्थक भूमिका निभायी है। रवीन्द्र कालिया भी अपनी 'गौरैया' कहानी में इस सांप्रदायिकता की समस्या से जूझते हुए सामान्य आदमी के बीच के सौहार्द व भाईचारे को प्रकाशित कर सांप्रदायिकता की मनोवृत्ति पर गहरी चोट करते हैं।

साम्प्रदायिकता की समस्या पर लिखी गयी ढेरों कहानियों में 'गौरैया' कहानी अपनी अलग पहचान इस रूप में बनाती है कि यह अपने कथ्य पर कहीं भी विमर्श नहीं रचती है, उसका कथन नहीं करती है। परिवेश चित्रण और गौरैया चिड़िया के प्रतीक से कथ्य

यहाँ व्यंजित होता है, वर्णित नहीं, विवेचित नहीं। कहानी में विचार इस रूप में अनुस्यूत है कि ऊपर से थोपा हुआ या आरोपित नहीं लगता। अपनी शैल्पिक युक्तियों से गौरैया एक प्रतीक बन जाती है, अमन का इंसानियत का, सांप्रदायिक दंगों-उत्पातों के बीच मानवीयता की तलाश का। सांप्रदायिकता के जेठ की दुपहरी-से तपते लू-संतप्त वातावरण में, "दोपहर के घनघोर सन्नाटे में उसकी आवाज पेड़ पौधों के ऊपर तितली की तरह थिरक रही थी।" कहानी का प्रारंभ जेठ की तपती दुपहरी के चित्रण से प्रारंभ होता है किंतु दुपहरी की भयंकर गर्मी के चित्रण द्वारा लेखक का अन्तर्निहित भाव पूरे देश में फैली सांप्रदायिकता की लपटों के ताप की ओर संकेत करता है जिसमें गौरैया की आवाज़ एक शांति की आवाज़ का सकून ले कर आती है— "पत्ता तक नहीं हिल रहा था। लू के थपेड़े, घने पेड़ों के बावजूद, बदन पर आग की लपटों की तरह लपलपा रहे थे। इस खौफ़नाक मौसम में बस एक ही राहत थी, गौरैया की मधुर आवाज़।" गौरैया का यह शांति प्रतीक अगले पैराग्राफ में और अधिक स्पष्टता प्राप्त कर लेता है, जब कहानीकार गौरैया को इस रूप में प्रस्तुत करता है, "गौरैया चुप हो जाती तो लगता, पूरी कायनात धू-धू जल रही है, अभी सब कुछ जल कर राख हो जाएगा। गौरैया बोलती तो लगता, अभी प्रलय बहुत दूर है। पृथ्वी पर जीवन के चिह्न बाकी हैं।" धू-धू जलती कायनात में गौरैया का यह रूप शांति कपोत-सा पाठक के मन में उतर जाता है। मनुष्य अपने-अपने धर्म-संप्रदाय की मान्यताओं को किस प्रकार दूसरों पर थोपना चाहता है, इसके प्रमाणस्वरूप गौरैया की आवाज़ में अपने-अपने धर्म-सप्रंदाय के नारों की प्रतीति खोजी जाती है, "'गौरैया हर-हर महादेव' कह रही है, गायत्री मंत्र का जाप कर रही है' या 'वेद की ऋिचा' पढ़ रही है, यह हिन्दू-मन की मान्यता है, गौरैया के स्वर में 'अल्लाह-ओ-अकबर, नारा-ए-तकबीर....अल्लाह-अल्लाह की रट' सुनना मुस्लिम मन का भरम है तो सिक्ख-मन की परिकल्पना उसमें 'वाह गुरु जी का खालसा, वाह गुरु जी की फतेह' की आवाज़ सुन कर खालिस्तान की माँग कर रही है। इस वातावरण चित्रण से उस स्थिति का बोध होता है जिसमें यह देश विभिन्न प्रकार की सांप्रदायिक माँगों, इच्छाओं और उनके संकल्पों को वाणी देती है। थोड़ा आगे चल कर कहानी में लेखक अपना मंतव्य और स्पष्ट करता है। कहानीकार कहना चाहता है कि "जब इंसानों के दिल में तरह-तरह की खुराफ़ातें जन्म ले रही हों तो ये पेड़-पौधे, जीव-जंतु उससे कैसे निरपेक्ष रह सकते हैं। ये भी तो उसी वातावरण के अंग हैं, जहाँ से लू से भी तेज़ चिलचिला रही है सांप्रदायिकता, दुश्मनों-मकानों की छतों पर छोटी-मोटी पताकाओं के रूप में फहरा रही है संप्रदायिकता, इश्तिहारों की शक्ल में दीवारों पर चस्पाँ कर दी गयी है सांप्रदायिकता। इस ज़हरीले माहौल में यह नन्हीं-सी गौरैया कैसे बेदाग़ रह सकती है। मगर इसकी आवाज़ सुन कर आभास होता है कि वह अभी इस संक्रमण से मुक्त है। पंजाब में आतंकवाद जिस रूप में फैल रहा था, वह भी सांप्रदायिकता का एक रूप था, उसको वहाँ मनाए जा रहे घल्लूघारा से व्यक्त कर दिया गया है। वास्तव में ये सब देश में जगह-जगह हो रही खुराफातें ही हैं।

गौरैया अपने घोंसले के लिए तिनके इकट्ठे कर रही है, लेखक की सोच में आता है कि गौरैया घोंसले के लिए घास के तिनके नहीं 'रामशिला' इकट्ठे कर रही है - कहानीकार पाठक को एकदम से रामलला के मंदिर निर्माण प्रकरण से जोड़ देता है। पूरे देश में रामलला के मंदिर निर्माण के लिए जिस प्रकार का धार्मिक उन्माद कार्य कर रहा था, 'गौरैया' के तिनके के माध्यम से उस ओर इंगित कर दिया गया है। दूसरे ही क्षण उसे समीप की ही मस्जिद की याद आती है, वहीं हनुमान मंदिर है। वस्तुतः कथाकार उस

साँझी संस्कृति की ओर ध्यान दिलाना चाहता है जहाँ पूरे देश में मंदिर-मस्जिद सदियों से साथ-साथ अपना अस्तित्व बिना किसी संकट के बनाए हुए हैं। काशी, मथुरा और कितने ही शहरों में सदियों से धार्मिक आस्था के ये केंद्र इसी रूप में खड़े हैं। एक-दूसरे के अस्तित्व को चुनौती दिए बिना तो फिर आज यह रामलला मंदिर-निर्माण और बाबरी मस्जिद का लफड़ा क्यों उठ खड़ा हुआ। शांति और साँझा संस्कृति की प्रतीक गौरैया धर्म के पचड़े में पड़ना नहीं चाहती। वह अपने लिए एक सुंदर नीड़ बनाना चाहती है। नीड़ बना कर गौरैया उस घर की सदस्या ही बन जाती है, वह और कथा-वाचक (नैरेटर) वार्तालाप करने लगते हैं। यहाँ कहानी लोक कथा के स्तर पर उतर आती है - उन दोनों के बीच प्यार-भरी-सी गुप्तगू होती है, "दरअसल, उससे दोस्ती होने के बाद मेरा समय अच्छा बीत रहा था। गौरैया भी परिवार में घुल-मिल गयी थी। उसने दो नन्हीं गौरैयों को जन्म दे दिया था जिसके जन्म पर घर में उत्सवी माहौल हो उठा था।

एक दिन गौरैया सुबह से ग़ायब हो जाती है, उसके बच्चे अकेले पड़े थे। कहानी के 'मैं' को बच्चों की फ़िक्र लग जाती है, उसे क्रोध भी आता है कि "वह अपने नन्हें-मुन्नों के प्रति इस क़दर निर्दय भी हो सकती है।" जब वह पत्नी को यह स्थिति बताता है तो वह व्यंग्य में उन्हें बोतल से दूध पिलाने की बात कहती है। "'मैं' चिढ़ कर किस्सा तोता-मैना की शैली में कहता है, "सब औरतें स्वार्थी होती हैं गौरैया की तरह।" फिर कहानी उन विवरणों में जाती है कि किस प्रकार गौरैया और बड़ा बच्चा घोंसले से ग़ायब हो गए थे, छोटी गौरैया अकेली रह जाती है। उन दोनों के ग़ायब हो जाने पर 'मैं' कुछ ऐसा परेशान हो रहा था जैसे पत्नी और बेटी घर से ग़ायब हों।" "गौरैया के पूरे खानदान से" "'मैं' की अनबन हो गयी थी।" एक शाम को 'मैं' ने देखा कि पूरा घोंसला खाली पड़ा है, "उसमें चिरई का पूत भी नहीं था।" थोड़ी देर बाद उसे गौरैया का पूरा परिवार मंदिर के कलश पर निर्द्वन्द्व भाव से बैठा नज़र आया, "तीनों अत्यंत मौज मस्ती में वहाँ बैठी पिकनिक मना रही थीं।'' उसके मन में सहसा यह प्रश्न उठता है कि ये चिड़ियाँ मंदिर के कलश पर ही क्यों बैठी हैं, इस कारण की खोज वह इस रूप में करता है, "क्योंकि इन्होंने एक हिन्दू के घर में जन्म लिया है। कुछ संस्कार जन्मजात होते हैं। यह अकारण ही नहीं है कि विश्राम के लिए इन्होंने मंदिर को चुना है।" वस्तुतः यह 'मैं' के अपने ही दिमाग़ का फ़ितूर है, उसकी पत्नी ने बताया कि थोड़ी देर पहले ही ये मस्जिद के गुम्बद पर बैठी थीं, लाउड स्पीकार से अजान के स्वर उठे तो ये उड़ कर मंदिर के कलश पर जा बैठीं।" कहानी यहाँ सोच को एक झटका-सा देती है कि धर्म-संप्रदाय की ये चौहद्दियाँ मनुष्य ने स्वयं ही बना डाली हैं - सामान्य जनता तो इन चिड़ियों की तरह इन छोटे-छोटे धार्मिक कटघरों से बहुत ऊपर है, वह चाहे जहाँ गौरैयों की तरह अपना आश्रय-स्थल चुन लेती है। वहीं अपना सुकून तलाशती है, बिना इस सोच के कि यह किस धर्म-संप्रदाय से उसे मिलती है। जब कभी 'मैं' उन्हें अपने बगीचे में देख लेता है तो सोचता है कि "जन्मभूमि का आकर्षण खींच लाता है इन्हें यहाँ !! किंतु 'जन्मभूमि' नाम आते ही फिर कहानी 'राम जन्मभूमि' प्रकरण की इंगिति दे उसे समय की चिंता से जोड़ देती है, "जन्मभूमि नाम से ही मुझे आशंका होने लगी ! मगर, मुझे विश्वास है, यहाँ फसाद की कोई आशंका नहीं है, क्योंकि एक चिड़िया ने जन्म ले लिया था, भगवान ने नहीं।" कहानी यहाँ बड़े कौशल से अपना संदेश दे जाती है कि उस भगवान की सार्थकता प्रश्नांकित है जो मनुष्य मनुष्य के बीच दीवार खड़ी कर दे। सामान्य जन तो चिड़ियों की तरह धर्म निरपेक्ष भाव से जीना चाहते हैं, अपने-अपने नीड़ों में मगन, मस्त !! एक शांतिपूर्ण जीवन जीते हुए। इसी रूप में कहानी का शीर्षक पूरी तरह चरितार्थ हो जाता है, 'गौरैया' मनुष्य को मानवीयता का संदेश देती है।

10.7 सारांश

सांप्रदायिकता की समस्या भारतीय राजनीति और समाज में बहुत गहरे प्रवेश कर चुकी है। हिंदी कहानी में सांप्रदायिकता की मनोवृत्ति पर करारी चोट की है, इसी क्रम में 'गौरैया' रवीन्द्र कालिया की एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण कहानी है। 'गौरैया' बहुत बारीकी से बुनी गयी कहानी है जिसमें लेखक ने गौरैया चिड़िया का प्रयोग प्रतीकात्मक रूप में किया है। गौरैया तो कहानी में एक माध्यम है जिसके इर्द-गिर्द कहानी व्यंग्य और फंतासी का एक वितान-सा रचती है। गौरैया की आवाज़ सुनकर कहानी का नैरेटर कथा-वक्ता 'मैं' यह कल्पना करता है कि यह चिड़िया विभिन्न धर्म-संप्रदायों के भड़काऊ नारों का उच्चार कर रही है जो समाज को 'गुमराह करने वाली बातें हैं।' वातावरण और परिवेश का इस्तेमाल भी कथाकार एक रूपक के रूप में करता है, जेठ की तपती दुपहरी की आग की लपटें मानो देश में चारों ओर व्याप्त सांप्रदायिकता का जुनून हैं, जो 'सृष्टि में प्रलय लाने' के लिए काफ़ी है किंतु गौरैया का शांति-स्वर ही इस प्रलय की आशंका को दूर रखने की आश्वस्ति देता है। कहानीकार बहुत स्पष्टता से अपना मंतव्य प्रकट करता है कि जब इंसानों के दिलों में तरह-तरह की खुराफ़ातें जन्म ले रही हों तो पेड़-पौधे जीव-जंतु उससे कैसे निरपेक्ष रह सकते हैं। गौरैया का स्वर सुनकर उसे लगता है कि यह अभी उस संप्रदाय से मुक्त है। 'गौरैया' का कभी मंदिर पर जा बैठना और कभी फुर्र से मस्जिद पर जा बैठना उस उन्मुक्त सोच को व्यक्त करता है कि जहाँ किसी को शांति मिले वह वहाँ जाए, वह चाहे मंदिर हो या मस्जिद हो। इसीलिए गौरैया बहुत समझदारी से "ठीक मंदिर और मस्जिद के बीच अपने नीड़ के लिए स्थान" चुनती है। 'गौरैया' धर्म के पचड़े में पड़ना नहीं चाहती।" गौरैया उस सामान्य आदमी का प्रतीक भी बनती है जो धर्म की संकीर्णताओं, मंदिर-मस्जिद की अलगाववादी प्रवृत्तियों से अलग सामान्य रूप में जीवन जीता है। उसके लिए आस्थाओं के ये केंद्र मंदिर-मस्जिद, और इनको ले कर किए जाने वाले झगड़े कोई मायने नहीं रखते। न उन्हें 'राम शिलाओं' से कोई मतलब है, न 'जन्मभूमि प्रकरण' से। उसका जो नीड़ है, वह भगवान का घर नहीं अपितु इंसान और इंसानियत का घर है। इस प्रकार कहानी बहुत कुशलता से यह संदेश छोड़ती है कि वास्तविक मानवीयता धर्म-संप्रदाय के संकीर्ण दायरों से बहुत ऊपर है।

10.8 अभ्यास

1. समकालीन कहानी में रवीन्द्र कालिया का महत्त्व बताइए।
2. समकालीन कहानी को रवीन्द्र कालिया की कहानियाँ किस रूप में एक नया आधार प्रदान करती हैं ?
3. सांप्रदायिकता की समस्या का हिंदी कहानी ने किस रूप में प्रतिरोध किया है ?
4. रवीन्द्र कालिया की प्रमुख कहानियों के कथ्य पर प्रकाश डालिए।
5. 'गौरैया' कहानी के भाषा और शिल्प पर विचार कीजिए।

इकाई 11 ड्राइंग रूम : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 लेखक परिचय

- 11.2.1 राजकमल चौधरी की शिक्षा-दीक्षा
- 11.2.2 राजकमल चौधरी की प्रवृत्तियाँ
- 11.2.3 राजकमल चौधरी का विवाह और सन्तान
- 11.2.4 सरकारी सेवा से राजकमल चौधरी की मुक्ति और लेखन में रुचि
- 11.2.5 राजकमल चौधरी का लेखन
- 11.2.6 राजकमल चौधरी का अवसान

11.3 'ड्राइंग रूम' कहानी का कथासार

11.4 'ड्राइंग रूम' कहानी की कथा-संरचना

11.5 'ड्राइंग रूम' कहानी का जीवन-दर्शन

11.6 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथाधारा और राजकमल चौधरी का कथालेखन

11.7 राजकमल चौधरी का कथा-शिल्प

11.8 राजकमल चौधरी की कथा-भाषा

11.9 सारांश

11.10 अभ्यास

11.0 उद्देश्य

यह इकाई एम. ए. (हिन्दी) के द्वितीय वर्ष के 'हिंदी कहानी' पाठ से सम्बन्धित है। इस इकाई में हिन्दी और मैथिली के प्रख्यात रचनाकार राजकमल चौधरी की सुप्रसिद्ध कहानी 'ड्राइंग रूम' के बारे में चर्चा की जाएगी। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- हिन्दी कथाधारा में राजकमल चौधरी के योगदान के बारे में जान सकेंगे/सकेंगी।
- भारतीय मनीषा के प्रखर रचनाकार और निष्ठावान तत्त्वदर्शी राजकमल चौधरी के साहित्य-सृजन और समाजशास्त्रीय चिन्तन को समझ सकेंगे/सकेंगी।
- कथाकार, कवि, उपन्यासकार, चिन्तक राजकमल चौधरी के सामाजिक और रचनात्मक सरोकारों को जान पाएँगे/पाएँगी।
- नागरिक जीवन की सूक्ष्मतर पहचान-शक्ति वाले रचनाकार राजकमल चौधरी की दृश्यों, परिस्थितियों और बिम्बों को पहचानने की जीवन-दृष्टि; और उसे प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करने के कौशल को समझ सकेंगे/सकेंगी।
- 'ड्राइंग रूम' कहानी के जरिए समकालीन नागरिक जीवन की जटिलता, मजबूरी, और मजबूरियों के गहन अन्धकार में भी राह तलाशने की मानवीय संवेदना को समझ सकेंगे/सकेंगी।

- राजकमल चौधरी की प्रसिद्ध कहानी 'ड्राइंग रूम' की शैलीगत विलक्षणता और मानव जीवन की तरलता में समय और परिस्थिति के कारण प्रविष्ट जटिलता के सूत्रों को जान पाएँगे/पाएँगी।
- जीवन की अन्धकारमय वास्तवकिता के बावजूद दरवाजे पर जगमग रोशनी जुटाकर दूसरों को प्रभावित करने और खुद को प्रवंचित करने के पाखण्ड को समझ सकेंगे/सकेंगी।
- सामाजिक व्यवस्था के जिन सुरंगों में जीवन-यापन की बुनियादी शर्तें पूरी करने में मनुष्य नकली जीवन, किराए की पोशाक, खोखली हँसी और बीमार खुशियाँ ओढ़ने को मजबूर होता है, उस व्यवस्था को बेनकाब करने की रचनात्मकता को समझ सकेंगे/सकेंगी

11.1 प्रस्तावना

किसी भी समय का साहित्य समकालीन समाज के नागरिक-जीवन के क्रूर यथार्थ का न केवल परिचय देता है, बल्कि उस जटिल जीवन से उबर पाने की राह भी दिखाता है। इस अर्थ में राजकमल चौधरी की कहानियाँ हमें समय की क्रूरता से मुठभेड़ करने और जीवन-संग्राम की भयावहता से होड़ लेने का साहस देती है। 'ड्राइंग रूम' राजकमल चौधरी की ऐसी ही कहानियों में से एक है! इस कहानी पर खासकर विचार करने से पहले, आइए हम थोड़ा उन परिस्थितियों पर विचार करते हैं जिसमें राजकमल चौधरी ने यह, और ऐसी अनेक कहानियाँ लिखीं।

ध्यान देने की बात है कि राजकमल चौधरी ने हिन्दी और मैथिली- दो भाषाओं में प्रचुर रचनाएँ कीं। वैसे उन्होंने लिखा तो अंग्रेजी और बंगला में भी, पर यहाँ उन पर विचार करना हमारा ध्येय नहीं है। हिन्दी, मैथिली में लिखी-छपी उनकी रचनाओं में छठे दशक की सामाजिक रूढ़ियों, पाखंडों, धर्मांधताओं, कुरीतियों, अत्याचारों, राजनीतिक षड्यंत्रों और बहुसंख्य साधारण जन के साथ किए जा रहे प्रपंच, धोखाधड़ी पर सावधान नजर दिखती है। जाहिर है कि गागर में सागर भरनेवाली राजकमल चौधरी की सारी कहानियां सन् 1967 से पहले ही लिखी गईं, मगर वे आज भी अपनी प्रासंगिकता प्रमाणित करती हैं, और विमर्श की नई व्याख्याएं आमंत्रित करती हैं। नारी लेखन और नारी जीवन पर विश्व-साहित्य में आज जितनी भी बहसें हो रही हैं, उसके बहुत सारे संकेत राजकमल चौधरी के कथा लेखन में चार-पांच दशक पूर्व से मौजूद हैं। पुरुष मनोवृत्ति के बरक्स, स्त्री-जीवन के इतने सूक्ष्म विश्लेषण की आवश्यकता हमें उन्हीं दिनों महसूस करनी चाहिए थी।

राजकमल चौधरी का संपूर्ण लेखन(कहानी, कविता, उपन्यास, निबंध, नाटक, पत्र, डायरी) मानव जीवन की बुनियादी शर्त पर टिका है। उन्होंने मानव जीवन की तीन ही आदम प्रवृत्तियां स्वीकार की– आत्म बुभुक्षा, यौन पिपासा, आत्म सुरक्षा, अर्थात् रोटी, सेक्स, सुरक्षा। इन तीनों की पूर्ति में मनुष्य मर्यादा तोड़ता है, असभ्य और जंगली हो जाता है। इसके पलट एक बिंदु और है कि मनुष्य 'शक्ति' चाहता है– 'पावर'! भारतीय स्वाधीनता के विगत पैंसठ वर्षों में, और राजकमल चौधरी की मृत्यु तक के समय को लें तो कुल बीस वर्षों में इस 'पावर' की व्याख्या मनुष्य को भ्रमित करती रही। मनुष्य का 'पावर' क्या है– पैसा, पद, स्त्री, बंगला, गाड़ी, गद्दी...क्या है मनुष्य का पावर? एक से एक तानाशाह पल भर का उन्माद मिटाने के लिए अपने मातहत स्त्री के सामने घुटने टेक देता है, नंगा हो जाता है; पैसे कमाने के लिए ईमान और इज्जत बेच आता है। मनुष्य पैसा कमाकर

इज्जतदार बनना चाहता है। राजकमल चौधरी का जीवन-दर्शन इस सूत्र में भी झलकता है कि मनुष्य सब कुछ बेचकर पैसा खरीदता है और पैसे से सब कुछ खरीद लेना चाहता है। उनका नायक खरीद पाता है या नहीं– यह और बात है, इच्छा पूरी हो या न हो, मूल बात है कि वह इच्छा पूरी करने की कोशिश करता है। ऐसे ही नायकों, उपनायकों की रचना उनके साहित्य का अहम् हिस्सा है और संभवतः इसी कारण ऐसे नायक के सर्जक को स्वेच्छाचारी कहा जाने लगा। वस्तुतः यह स्वेच्छाचार नहीं है। मानव सभ्यता का इतिहास गवाह है कि मनुष्य मात्र की पहली अभिलाषा जिजीविषा है, अर्थात् जीने की इच्छा। और जीवन जीने की पहली शर्त है रोटी। यह बात मान लेने की है कि भूख में निर्णय लेने की बड़ी ताकत होती है। भूखा व्यक्ति पाप-पुण्य की परिभाषा जानने की इच्छा नहीं रखता, उसके जीवन की प्रथम और परम नैतिकता रोटी होती है।

आजादी के बाद भारतीय समाज में पनपी कुछ दुरवस्थाओं, सियासी तिकड़मों, ठगे हुए नागरिकों की निराशाओं, आजादी के जश्न में मसरूफ राजनेताओं, राजनीतिक मोहभंग, सीमा संघर्ष और पड़ोसी राष्ट्र की धोखेबाजी का चित्रण हिन्दी के रचनाकारों के लिए ज्वलन्त विषय रहे हैं। जीवन की बुनियादी सुविधा जुटाने में बदहवास भारतीय नागरिक को, मुश्किल से जुटाई हुई सुविधा भोग पाने की स्थिति नहीं दी जा रही थी। जीवन की यही त्रासदी उसे नकार से भर रही थी, समाज-व्यवस्था द्वारा निर्मित आचार-संहिता को वह क्रूरता से कुचल डालना चाहता था। अभाव, उपेक्षा, दमन, शोषण, पराजय, अपमान, अवमूल्यन... से प्रताड़ित आजादी के बाद का नायक हिन्दी कहानी में कभी प्रतिक्रियावादी की तरह, कभी आन्दोलनकारी की तरह, कभी व्यथित-पराजित समझौतावादी की तरह, कभी नकार-भाव से भरे स्वेच्छाचारी की तरह उपस्थित होता रहा।

सचाई है कि स्वातंत्र्योत्तर काल में सत्ता की चमक-दमक में बड़े-बड़े सूरमाओं की आंखें चौंधियाने लगी थीं। तात्कालिक लाभ और चमत्कारिक उन्नति, वैभव-साधन, सुख-संपदा की प्राप्ति की लालसा में निरक्षर, साक्षर, उच्च शिक्षाप्राप्त लोग...सब सम्मोहित होने लगे और सत्ता की गलियों में भटकने लगे। समाज का व्यवस्था-विखंडन हुआ, रूढ़िग्रस्त परंपराओं का निर्वाह करने वाला एक वर्ग अपने जातीय संस्कारों में उलझा रहा, श्रम और श्रमजीवी को हेय समझना उसके अहं का पर्याय-सा बन चुका था। संचित एवं स्थायी संपदाओं को बेचकर खाना-भोगना उसके जीवन-यापन की मजबूरी हो गई। रूढ़िग्रस्त जन्मजात संस्कारों की वजह से यह वर्ग श्रम एवं श्रमजीवियों के करीब जाने से कतराता था, और अपनी अक्षमता के कारण ऊपर वाले वर्ग में अपने को समाहित कर नहीं पा रहा था। स्वातंत्र्योत्तरकालीन समाज के नागरिक परिदृश्य का द्वैध भरा यह आचरण राजकमल चौधरी की कहानियों में उजागर हुआ है, जो सामान्य नागरिक को जीवन सँवारने की प्रेरणा देता है।

11.2 लेखक परिचय

राजकमल चौधरी की जन्मतिथि और जन्मस्थान के सम्बन्ध में कई विवाद हैं, पर सचाई है कि उनका पितृ-ग्राम, सहरसा (बिहार) जिले का इतिहास-प्रसिद्ध गाँव महिषी है और 13 दिसम्बर 1929 को उनके ननिहाल 'रामपुर हवेली' में उनका जन्म हुआ। उनके पिता ने उनका नाम मणीन्द्र नारायण चौधरी रखा था। सगे-सम्बन्धियों और दोस्तों के बीच वे 'फूल बाबू' के नाम से जाने जाते थे। कुछ दिनों तक उन्होंने अपना नाम मधुसूदन दास भी रख लिया था। हिन्दी और मैथिली की पत्रिकाओं में उन्होंने अनामिका चौधरी, वनलता सिंह, और अपनी पत्नी शशि चौधरी के छद्म नाम से कई रचनाएँ प्रकाशित करवाईं। मासूम अजीमाबादी के नाम से भी उनकी एक छोटी-सी कविता प्रकाशित है। बीच में

उन्होंने कई बार अपना लेखकीय नाम बदला। वे नाम थे– मणीन्द्र किरण, पुष्पतीर्थ, स्वर्णफूल, पुष्पराज, मणीन्द्र और राजकमल। अन्ततः राजकमल चौधरी को ही इतिहास में अंकित होना था।

वे भव्य और संस्कृतनिष्ठ वंश परम्परा की सन्तान थे। उनके पितामह पं. फूदन चौधरी ने पारम्परिक रूप से संस्कृत भाषा का अध्ययन किया था। व्याकरण, साहित्य और दर्शन शास्त्र में उन्हें बहुज्ञता हासिल थी। 'शास्त्रार्थ-पारंगत' की उपाधि से विभूषित पं. फूदन चौधरी मधुबनी स्टेट के राज पण्डित थे। उनके चार पुत्रों में से दूसरे, मधुसूदन चौधरी, राजकमल के पिता थे; वे गणित और साहित्य के सुप्रसिद्ध विद्वान थे। उनको गणित, दर्शन शास्त्र, संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी भाषाओं के साहित्य और व्याकरण की गहन समझ थी। एक पत्नी के निस्सन्तान दिवंगत हो जाने के बाद सन् 1926 में त्रिवेणी देवी के साथ उनकी शादी हुई। इस पत्नी से उन्हें तीन पुत्र और एक पुत्री हुई, राजकमल चौधरी उनमें सबसे बड़े थे। सन् 1939 में त्रिवेणी देवी दिवंगत हुईं। अड़तीस वर्ष की आयु में पं. मधुसूदन चौधरी ने जून 1940 में फिर तीसरी शादी परसौनी गाँव में की। कहते हैं कि तीसरी शादी के बाद वे अपनी सन्तानों (राजकमल एवं उनके अन्य दो भाई तथा एक बहन) से निरपेक्ष हो गए थे। राजकमल चौधरी के बाल्यावस्था का कुछ भाग ननिहाल में ही बीता। पिता व्यवसाय से शिक्षक थे।

11.2.1 राजकमल चौधरी की शिक्षा-दीक्षा

बालपन से ही राजकमल चौधरी तीक्ष्ण तेजस्वी, दृढ़ प्रतिज्ञ, पढ़ाकू तथा मनमौजी स्वभाव के थे। यह विशेषता उन्हें पितामह और पिता से मिली थी। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा अपने पिता के साथ विभिन्न शहरों में सम्पन्न हुई। जयनगर में उनके पिता उच्च विद्यालय में शिक्षक थे। लोअर प्राइमरी उन्होंने वहीं से किया। तीक्ष्ण मेधाविता और एक योग्य शिक्षक का पुत्र होने के कारण छात्र और अध्यापक वर्ग में उनका सम्मान था।

जयनगर से उनके पिता का स्थानान्तरण बाढ़ (पटना), फिर नवादा और फिर गया हो गया। मैट्रिक की परीक्षा मणीन्द्र ने सन् 1947 में नवादा से पास की। पटना बी.एन. कॉलेज में उनका नामांकन कराया गया। यह समय उनके जीवन के उद्दाम विद्रोह और भटकाव का था। विभिन्न वर्जनाओं और कठोर अभिभावकत्व से मुक्ति का अवसर देखकर वे चंचल और उच्छृंखल हो गए।

राजकमल के पिता मधुसूदन चौधरी कट्टर विचारों के परम्परागत लोग थे। कठोर अनुशासन में उनका अटूट विश्वास था, युवावर्ग की उन्मुक्तता उन्हें अप्रिय लगती थीं। अपने द्वारा अनुभूत सत्य को वे सबसे बड़ा मानते थे। तत्कालीन परिस्थिति से प्रभावित होकर महात्मा गाँधी के स्वाधीनता आन्दोलन में रुचि रखते थे, पर सामाजिक जीवन में प्रगतिशीलता और रूढ़िभंजन उन्हें पसन्द नहीं था।

राजकमल की बाल-मनोदशा इन बातों से गहरे तौर पर परिचित थी। बालपन से ही वे पिता के इन अनुभवों और अभ्यासों को नापसन्द करते थे।

बहुत कम आयु में उन्होंने दो-दो मृत्यु निकट से देखी थी। उनकी एक छोटी बहन की मृत्यु मात्र ढाई वर्ष की आयु में हो गई थी। कुछ ही दिनों बाद उनकी माँ का देहावसान हुआ। माँ की मृत्यु ने राजकमल की बालसुलभ चंचलता और रौनक समाप्त कर दी।

उक्त समस्त सामाजिक स्थितियों में ही राजकमल ने अपनी जीवन-दृष्टि को माँजा और समाज-व्यवस्था की मानव विरोधी हरकतों को प्रश्नांकित किया।

सन् 1950 में मारवाड़ी कॉलेज भागलपुर से उन्होंने आई.कॉम., और सन् 1953 में गया कॉलेज से बी.कॉम. पास किया। इससे पूर्व सन् 1952 में भी बी. कॉम. की परीक्षा में शामिल हुए थे, पर सफल नहीं हो सके। पाठ्यक्रम की किताबों के बजाए उनकी रुचि अन्य किताबों में रहती थी। हमेशा वे पुस्तकालय जाकर बेहतर किताबों के अध्ययन की गुंजाइश निकालते रहते थे। उनकी जिज्ञासु प्रकृति कालान्तर में बढ़ती गई, लगातार अधिक कल्पनाशील होते गए।

कुछ तो अपनी पारिवारिक विसंगति के कारण और कुछ सामाजिक कुप्रथाओं के कारण वे बचपन से ही विद्रोही स्वभाव के थे। अनीति, अन्याय तथा विसंगतियों के प्रति विद्रोह का जो भाव बालपन में उनमें स्पष्ट होने लगा था, वह आगे चलकर अधिक तीक्ष्ण और ऊर्जावान साबित हुआ। सन् 1942 के आन्दोलन में, जब वे तेरह वर्ष के थे, जयनगर में थे, वहाँ वे क्रान्तिकारी लोगों के सम्वादवाहक का काम करते थे।

11.2.2 राजकमल चौधरी की प्रवृत्तियाँ

राजकमल चौधरी के लिखने-पढ़ने की गति बहुत तेज थी। अध्ययन-फलक विराट था। उनके लेखकीय जीवन की शुरुआत कलकत्ते से हुई। वहाँ का भौगोलिक और सामाजिक परिवेश उनके लेखन में पराग की तरह समाया हुआ है। निर्भीकता उनका मूल स्वभाव था। बौद्धिक बहस में किसी से भी नहीं डरते थे। परहित-भावना से वे अभिभूत रहते थे। नगर, नागरिक, परिवेश और जीवन को देखने की उनकी आलोचकीय दृष्टि सर्वथा भिन्न थी, स्थापित रूढ़ियों और जर्जर मानदण्डों से एकदम अलग।

11.2.3 राजकमल चौधरी का विवाह और सन्तान

श्रीमती शशिकान्ता चौधरी से राजकमल चौधरी की शादी 13.07.1951 को हुई। उनका वास्तविक नाम कर्पूर देवी था। उस समय राजकमल बी.कॉम. के छात्र थे। शशिकान्ता जी अधिक पढ़ी-लिखी महिला तो नहीं थीं, किन्तु बुद्धिमती और विवेकी थीं। पटना सचिवालय की नौकरी के दिनों में (सन् 1955-56) वे बराबर शशिकान्ता को साथ रखते थे।

राजकमल की पहली सन्तान(बेटी) का जन्म 08.09.1960 को हुआ, इससे उनका दाम्पत्य-सम्बन्ध अधिक प्रगाढ़ और स्नेहसिक्त हुआ। इस कन्या का नाम उन्होंने 'दिव्या' रखा। दिव्या के जन्म के बाद दाम्पत्य सम्बन्धी अपनी मानसिकता को रेखांकित करते हुए उन्होंने एक कहानी भी लिखी— भयाक्रान्त (सारिका, अप्रैल, 1963)।

बाद में, दो और सन्तानें हुईं-मुक्ता (पुत्री) और नीलू (पुत्र)। अपनी तीनों सन्तानों में सबसे अधिक स्नेह उन्होंने दिव्या को दिया। अन्तिम समय में नीलू को वे बहुत अधिक मानने लगे थे। अपनी प्रसिद्ध कविता 'मुक्ति-प्रसंग' के अनेक स्थलों पर उन्होंने नीलू के सम्बन्ध में अत्यन्त भावुक प्रश्न उठाया है। बताया जाता है कि सन् 1956 में राजकमल ने सावित्री नाम की स्त्री से एक और शादी की।

11.2.4 सरकारी सेवा से राजकमल चौधरी की मुक्ति और लेखन में रुचि

पटना सचिवालय में शिक्षा विभाग में नौकरी करते हुए वे फाइलों में उत्तेजनात्मक नोट लिखा करते थे, यह देखकर उनके अफसर बहुत रुष्ट रहा करते थे। एक दिन अपने सारे प्रमाण-पत्रों को फाड़कर, नौकरी छोड़कर वे घर से निकल गए। दिसम्बर, 1957 में अपनी सम्पूर्ण जिजीविषा और दुर्दमनीय व्यक्तित्व के साथ वे कलकत्ता आ गए। यहीं वे

'मिथिला-दर्शन' पत्रिका से जुड़े। जीविका के लिए मृदुला चक्रवर्ती नाम की एक लड़की को उन्होंने ट्यूशन पढ़ाना प्रारम्भ किया। लेखन में रुचिशील तो 1949-50 से ही थे लेकिन प्रकाशन की शुरुआत बाद में हुई।

11.2.5 राजकमल चौधरी का लेखन

प्रकाशन के साक्ष्य के आधार पर मैथिली में उनकी पहली कहानी 'अपराजिता' (वैदही, अक्टूबर, 1954) और पहली प्रकाशित कविता 'पटनिया टट्टूक प्रति' (वैदेही, फरवरी, 1955) है । हिन्दी में उनकी पहली कविता 'बरसात रात प्रभात' (नई धारा, सितंबर 1956), पहली कहानी 'सती धनुकाइन' (कहानी, मार्च 1958) और पहला निबंध 'भारतीय कला में सौन्दर्य-भावना' (ज्ञानोदय, जून 1959) है। यद्यपि 'सती धनुकाइन' मैथिली में पहले ही (पल्लव, मई, 1957) छप चुकी थी, पर हिन्दी में उनकी पहली प्रकाशित रचना इसे ही माना जाता है।

मैथिली में उनकी कोई प्रारम्भिक पाण्डुलिपि उपलब्ध नहीं है, इस कारण उनके मैथिली लेखन के पूर्वाभ्यास की चर्चा नहीं हो सकती, पर हिन्दी में उनकी हस्तलिपि में अप्रकाशित पाण्डुलिपि 'विचित्रा' में 'फागुनी' शीर्षक कविता 17.02.1950 की कविता है। कहते हैं कि टी.एन.बी. कॉलेज (भागलपुर) की टर्मिनल परीक्षा की उत्तर-पुस्तिका के मूल्यांकन के समय उनके लिखे हिन्दी निबन्ध से प्रो. माहेश्वरी सिंह 'महेश' इतने प्रभावित हुए कि वह निबन्ध कॉलेज पत्रिका में छपवाया गया। इसके बाद से वे द्रुत लेखन करते रहे।

कलकत्ता-प्रवास, उनकी साहित्यिक उपलब्धि का महत्त्वपूर्ण अन्तराल रहा। अपने रचना-संसार का अधिसंख्य कथ्य राजकमल ने यहीं से बटोरकर अपनी झोली में रख लिया था। स्वरगन्धा, आदिकथा, आन्दोलन...आदि पुस्तकें तो लिखी भी यहीं गईं। हिन्दी की उनकी अधिकांश रचनाओं पर कलकत्ता का प्रभाव किसी-न-किसी तरह है।

कलकत्ता में मिथिला-दर्शन पत्रिका की देख-रेख की जिम्मेदारी उन्हीं पर थी। बाद में वे भारतीय ज्ञानपीठ से सम्बद्ध हुए, और ज्ञानोदय के सम्पादन में सहयोग दिया। पर उनके उदात्त चरित्र और मालिक की व्यापार-वृत्ति में ताल-मेल नहीं बैठ सका। वे वहाँ से चल पड़े। सन् 1960 में उन्होंने अपनी पत्रिका रागरंग शुरू की। यह पत्रिका सर्वविधि अपूर्व मानी जाती है। प्राप्त जानकारी के अनुसार 01.09.1963 को उन्होंने पूर्ण रूप से कलकत्ता छोड़ दिया| पटना आकर उन्होंने 'भारत मेल' के सम्पादन विभाग में नौकरी प्रारम्भ कर दी। 'भारत मेल' पत्र 'राजनीतिक स्टण्ट' की तरह सप्ताह में दो बार प्रकाशित होता था। उन्होंने पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की कुछ कहानियों का संकलन, सम्पादन छह खण्डों में किया।

सन् 1961 तक राजकमल ने हिन्दी में लिखकर, बंगला से अनुवाद कर, जीवन-यापन करने का निर्णय ले लिया था। वायरन (आन्द्रे मालरक्स), शंकर (चौरंगी), सरोज बन्द्योपाध्याय (सीमान्त), दीपक चौधरी (फरियाद), वाणी राय (चोखे आमार तृष्णा) प्रभृत्ति के अनुवाद उन्होंने जहाँ-तहाँ रहकर किए। बंगला से हिन्दी अनुवाद करने में वे माहिर माने जाते थे। बंगला कविताओं का भी उन्होंने खूब अनुवाद किया। यू.एस.ए. से प्रकाशित पत्रिका 'पोटपुरी' के ग्रीष्मकालीन अंक 1966 में उनकी एक कविता 'बिलीफ' शीर्षक से प्रकाशित हुई। इस कविता के साथ यह भी उद्धृत है कि यह कविता कवि द्वारा हिन्दी से अंग्रेजी में अनूदित है।

उनकी प्रकाशित कृतियाँ हैं : हिन्दी में : अग्निस्नान, शहर था शहर नहीं था, नदी बहती थी, ताश के पत्तों का शहर, मछली मरी हुई, बीस रानियों के बाइस्कोप, एक अनार एक

बीमार, अग्निस्नान एवं उपन्यास (उपन्यास); मुक्तिप्रसंग, कंकावती, इस अकाल वेला में, विचित्रा, ऑडिट रिपोर्ट(कविता-संग्रह); मछली जाल, सामुद्रिक एवं अन्य कहानियाँ, प्रतिनिधि कहानियाँ : राजकमल चौधरी, पत्थर के नीचे दबे हुए हाथ, राजकमल चौधरी की चुनी हुई कहानियाँ, बन्द कमरे में कब्रगाह, खरीद बिक्री, राजकमल चौधरी : संकलित कहानियाँ (कहानी-संग्रह); शवयात्रा के बाद देहशुद्धि, बर्फ और सफेद कब्र पर एक फूल(निबन्ध, पत्र, डायरी आदि); राजकमल चौधरी रचनावली (8 खण्ड)। मैथिली में : आदिकथा, पाथरफूल, आन्दोलन (उपन्यास); स्वरगंधा, कविता राजकमलक (कविता-संग्रह); ललका पाग, कृति राजकमलक, एकटा चम्पाकली एकटा विषधर, साँझक गाछ (कहानी-संग्रह)। अनूदित कृतियाँ : चौरंगी(शंकर के उपन्यास चौरंगी का बांग्ला से अनुवाद) और मेरी आँखों में प्यास (वाणी राय के उपन्यास चोखे आमार तृष्णा का बांग्ला से अनुवाद)।

11.2.6 राजकमल चौधरी का अवसान

अनुज पीढ़ी के लोग उनका आदर करें अथवा पूर्ववर्ती पीढ़ी के लोग प्रसन्न रहें और आशीष दें-इस बात की चिन्ता उन्हें कभी नहीं हुई। अपने दृढ़ निश्चय पर वे निर्भीकता से बढ़ते गए। उनके बारे में साहसिकता, अन्वेषण-प्रवृत्ति, अध्ययनशीलता का क्षेत्र-विस्तार, परम्परा-भंजकता, समन्वय-प्रवृत्ति, प्रभावकारी व्यक्तित्व, शालीन व्यवहार आदि कुछ अपूर्व गुणों के अनेक संस्मरण सुनने को अब भी मिलते हैं।

अक्टूबर, 1965 में ट्यूमर के कारण उनके पेट में दर्द शुरू हुआ। अंकुशविहीनता ने राजकमल को सारे दुर्व्यसनों का शिकार बना दिया था, जो उनके स्वास्थ्य के लिए हानिदायक हुआ। वही पेट-दर्द आगे चलकर उनकी जान का गाहक हो गया, मुक्तिकामना से भरे जोश के राजकमल चौधरी को अन्ततः 19 जून 1967 को शरीर से ही मुक्ति मिल गई। राजकमल के देहावसान के पश्चात् रेडियो, अखबारों, पत्रिकाओं आदि में श्रद्धांजलियों का ताँता लग गया। सम्पादकीय टिप्पणियों और विशेषांकों की शृंखलाएँ चलने लगीं। हिन्दी में प्रायः सभी पत्र-पत्रिकाओं में उन पर कुछ-न-कुछ अवश्य ही आया। प्रेमचन्द के अलावा भारतीय भाषाओं में कम ही ऐसे रचनाकार हैं, जिन पर इतनी संख्या में विशेषांक छपे।

11.3 'ड्राइंग रूम' कहानी का कथासार

'ड्राइंग रूम' कहानी नवम्बर 1960 में जागृति पत्रिका में प्रकाशित हुई। सम्भव है कि यह उसी वर्ष या उससे कुछ पहले लिखी गई हो। तब भारतीय स्वाधीनता का तेरहवाँ वर्ष चल रहा था। पूरे देश की प्रबन्धन व्यवस्था अपनी अन्तर्राष्ट्रीय पहचान की चमक-दमक में व्यस्त थी और इधर आम भारतीय नागरिक जीवन-यापन की बुनियादी सुविधा जुटाने और अस्तित्व रक्षा के संसाधन तलाशने में तत्पर था। 'ड्राइंग रूम' ऐसे ही नागरिकों की प्रतिनिधि 'आइरीन' नाम की भारोपीय युवती की जीवन-व्यवस्था की कहानी है।

कथावाचक दयानन्द एक अखबार के मैगजीन सैक्शन का प्रधान सम्पादक है। दिए गए विवरण के अनुसार कथा नायिका आइरीन ठाकुर उस अखबार में दयानन्द के अधीनस्थ 'वूमन-सैक्शन' की प्रभारी की कुल तीन सौ रुपए प्रति मास की नौकरी पाने की अभिलाषी है। आइरीन ने दयानन्द से परिचय बनाकर उन्हें अपने घर बुलाया है, ताकि वे प्रभावित होकर इस नौकरी के लिए उसका नाम 'रिकमेण्ड' कर दें। आइरीन एक दिवंगत उच्च पदस्थ वायुसेना अधिकारी की बेटी है, जो उच्च वंशीय ब्राह्मण थे। आइरीन की माँ कैथरिन, फ्रांस या बेल्जियम या चेकोस्लोवाकिया की थीं। आइरीन की छोटी बहनें

लिलिअन, शकुन्तला, शीलू, मिनी और छोटा भाई सुभाष उसके साथ रहता है। इस छह सदस्यीय परिवार के भरण-पोषण की जिम्मेदारी आइरीन पर है। बस इतनी-सी पारिवारिक हैसियत की आइरीन के आवास पर दयानन्द पहुँचते हैं और उसके ड्राइंग रूम की सजावट से उसके जीवन-स्तर पर उच्च धारणा बनाते हुए उसे स्पष्ट कह देते हैं कि ऐसे भव्य रहन-सहन वाली लड़की के लिए यह नौकरी बहुत छोटी है, मैं इस नौकरी के लिए आपका नाम 'रिकमेण्ड' नहीं कर सकता, 'आप खुद इतनी सस्ती नौकरी स्वीकार नहीं करेंगी।' इस बात पर आर्त्त होकर आइरीन उन्हें अपने भीतर के कमरे में ले जाती है। जो कमरा, कीचन...के साथ-साथ कैथरीन की वास्तविक हैसियत का सबूत भी है। यह स्थिति देखकर दयानन्द दंग रह जाते हैं। वे बुझी हुई निगाहों से ड्राइंग रूम की हर चीज को देखते रहते हैं। आइरीन को देखते रहते हैं, और धारणा बनाते हैं कि 'आइरीन को फैशन से और मेकअप से और ऐशो-इशरत से वाकई नफरत है।'

कहानी की घटना बस इतनी-सी है। पर जैसा कि होता रहा है, कोई कहानी घटना के कारण महत्त्वपूर्ण नहीं होती, वह प्रस्तुति के दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण होती है। घटना तो यहाँ बहुत साधारण और छोटी है, पर बुनाबट के कारण इस कहानी का जीवन-दर्शन और व्यंजना उसे विराट बनाती है।

11.4 'ड्राइंग रूम' कहानी की कथा-संरचना

सचाई है कि किसी परिदृश्य की विडम्बना बिम्बों के द्वैध और विरोधाभास में झलकती है। इस कहानी में कथावाचक को कथानायिका और कथा-परिदृश्य के नागरिक जीवन का चित्र भौंचक करता है। यहाँ पाठकों की नजर में वास्तविकता और प्रदर्शन के बीच का विरोधाभास; और ऐसा करने की मानवीय मजबूरियाँ बहुत बड़ी विडम्बना पेश करती हैं। दार्शनिक आधार पर कहें तो पूरा मानव जीवन ही एक नाटक है। पर इस नाटक में जब मनुष्य को बार-बार तरह-तरह का नाटक खेलना पड़ता है, सामाजिक परिस्थिति में खुद को फिट करने हेतु, अपने अस्तित्व की रक्षा, और अपनी नाटकीय अस्मिता का संकेत देने हेतु मनुष्य पल-पल स्वांगों में लीन रहता है, उसके मनोभावों में तीक्ष्णता और तीव्रता से परिवर्तन लाने के क्रम में बार-बार कटे मुर्गे की तरह छटपटाता रहता है– यह कहानी इस विडम्बना का बेहतरीन उदाहरण है।

कथावाचक को अभिजात्य आचरण से भय लगता है, इसलिए आइरीन से फोन पर बात करते हुए उन्हें डर लगता है। आइरीन के घर जाते हुए, अन्धेरी सीढ़ियाँ चढ़ते हुए उन्हें डर लगता है कि उनकी मामूली-सी शक्ल और पहनावे का आइरीन पर क्या असर पड़ेगा? वहाँ पहुँचने पर आइरीन के ड्राइंग रूम की साज-सज्जा, कमरे में लेटेस्ट डिजाइन की फर्नीचर, फर्श पर पर्शियन कारपेट, पियानो-सेट, रेडियोग्राम, शारीरिक आभिजात्य के सुन्दरतम उदाहरण के रूप में खुद को पेश करती हुई आइरीन, खादी की सफेद साड़ी और लो-कट ब्लाउज का उसका लिवास, अपनी बहन शकुन्तला की नृत्य-प्रतिभा और उसके ऐरोगेन्स का विवरण, दूसरी बहन शीलू के लाइंग क्लब का विवरण, अपनी पारिवारिक श्रेष्ठता उजागर करने के उसके सारे आयास को देखकर दयानन्द दंग हैं।

आइरीन के उस कौशल को देखकर चकित होना पड़ता है कि किसी के बारे में कम जानकारी रहने पर भी कोई जरूरतमन्द व्यक्ति उसकी खुशामद और तारीफ में किस तरह की पद्धति अपनाता है! एक आकर्षक शारीरिक गठन वाली युवती किसी मर्द के बगल में बैठकर कहे कि 'अचानक इस पहली मुलाकात में ही हम कितने नजदीक आ

गए हैं।'-तो इसका क्या अर्थ लगाया जाए? वह दयानन्द की खुशामद में कहती है कि मैं आपके लेखन आदि को पढ़कर आपको 'आक्सफोर्ड स्टाइल का आदमी' समझती थी, आपकी 'मदरटंग' अंग्रेजी समझती थी, 'मगर आप तो शत-प्रतिशत भारतीय हैं!' मुझे भी 'काण्टीनेण्ट का कायदा-कानून' पसन्द नहीं है, मुझे 'अपना यह देश ही अच्छा लगता है।'

आइरीन के इस वक्तव्य में कितनी चतुराई, कितनी लाचारी, और कितना लक्ष्य केन्द्रित कौशल है-यह देखते ही बनता है। आइरीन को मालूम नहीं कि दयानन्द नाम का यह 'पुरुष अधिकारी' किस आचरण और किस वक्तव्य से प्रसन्न होगा, इसलिए थोड़ा नजदीक बैठकर, विभिन्न कोटि की प्रशंसा करती हुई, कला-साहित्य-संस्कृति, अध्ययन, मनन और सादगी में अपना प्रेम, क्लासिक लिट्रेचर के प्रति अपनी दिवंगत माँ का प्रेम, नृत्य के प्रति अपनी छोटी बहन शकुन्तला का प्रेम, संगीत, स्वाभिमान, और लौकिक अहमन्यता बरकरार रखने के लिए अपनी दूसरी बहन लिलियन का प्रेम, लाइंग क्लब और उड़ान के प्रति तीसरी बहन शीलू का प्रेम प्रदर्शित करती हुई, अपनी, अपने परिवार की, और अपनी विरासत की भव्यता प्रदर्शित करती जा रही है। और अचानक, जब उसे मालूम होता है कि दयानन्द जैसा 'पुरुष अधिकारी' इन बातों से प्रभावित नहीं हुआ, तो तत्काल वह अपना पैंतरा बदल लेती है।

आइरीन के प्रभावित करनेवाले सारे उद्यमों के बाद जब दयानन्द कहते हैं कि 'फिर आपने इतनी मामूली-सी नौकरी के लिए एप्लिकेशन क्यों दिया है?' तो आइरीन को अपना पाशा उल्टा होता नजर आता है। और तब वह आनन फानन में बातचीत की दिशा उलट देती है। खुद को भिखारन की गठरी की तरह खोलकर फैला देती है। वह कहती है, 'देखिए, दयानन्द साहब, आपने इतने साफ लफ्जों में नहीं पूछा होता, तो मैं यही कहती कि मैं रुपयों के लिए नहीं, शौक के लिए, जॅर्नलिज्म के अपने शौक के लिए आपके न्यूजपेपर में काम करना चाहती हूँ। मगर, अब ऐसा नहीं कहूँगी।...आइए मैं आपको अपना घर दिखाती हूँ-।'

और घर में उन्होंने देखा कि 'भीतर कुछ नहीं था, बहुत ही छोटा किचन का कमरा था। कमरे में एक ओर चूल्हे पर चावल पक रहा था, खाने के बर्तन बिखरे थे, दो-तीन बड़े-बड़े ट्रंक रक्खे थे, बिस्तरों के बण्डल पड़े थे, घर-गृहस्थी का पूरा सामान पड़ा था। दूसरी ओर जमीन पर दरी बिछाकर तीन बहनें बैठी थीं। शकुन्तला फिल्म फेयर का कोई पुराना अंक पलट रही थी। लीलू चावल से कंकड़-पत्थर चुन रही थी। शीलू अधलेटी पड़ी थी और ताड़ का पंखा खुद को और अपनी बड़ी बहिनों को झल रही थी। एक मोढ़े पर भाई बैठा था और फिजिक्स की एक किताब पढ़ रहा था। और कमरे में कहीं इतनी जगह नहीं बच रही थी जहाँ मैं (अर्थात्, कथावाचक दयानन्द) और आइरीन एक साथ खड़े हो सकते।'

फिर उन्होंने सुना कि आइरीन से उसकी छोटी बहन पूछ रही थी--'दीदी, तुम्हें नौकरी मिल जाएगी न? वे क्या कह रहे थे?'

फिर ड्राइंग रूम में आकर आइरीन ने कहा—'दयानन्द साहब, इस कमरे की हर चीज किराए की है और पिछले पाँच-सात महीनों से किराया नहीं दिया गया है। और, नेपाली बेयरा और नौकरानी मेरे नहीं हैं, बगल के बड़े लैट वालों के हैं। वे लोग दयालु हैं, कभी-कभी अपने नौकरों से हमें काम लेने देते हैं।'

इस कहानी की यह संरचना, विमर्श के बड़े फलक की दरकार रखती है। बीसवीं सदी का छठा दशक, अर्थात् स्वाधीनता के तेरह बरस बाद आम भारतीय नागरिक की जीवन-कथा क्या थी? दिवंगत वायुसेना अधिकारी की पाँच-पाँच जवान बेटियाँ और एक अध्ययनशील तरुण बेटा किस तरह का जीवन बसर कर रहा था? अस्तित्व-रक्षा में जीवन के जिस छद्म में पाँचो बहनें जुटी थीं, वह छद्म आगामी दिनों में उन्हें कहाँ ले जानेवाला था? जिस पत्रकारिता के जोर से भारत के स्वाधीनता-संग्राम को बल और मुक्ति-कामना हासिल हुई थी, उस पत्रकारिता के बारे में स्वाधीनता के तेरह बरस बाद की युवतियाँ कैसे छद्म की कल्पना किए हुई थीं?... यह राजकमल चौधरी के कथा-कौशल की विलक्षणता ही है, जहाँ छोटे-से कथ्य को बुनावट के कौशल से एक जानदार और प्रभावकारी कहानी बनाई जाती है।

11.5 'ड्राइंग रूम' कहानी का जीवन–दर्शन

राजकमल चौधरी की आलोच्य कहानी 'ड्राइंग रूम' उनके कथालेखन का एक खास रंग प्रस्तुत करती है। स्वातंत्र्योत्तरकालीन भारतीय समाज के नागरिक परिदृश्य में एक तरफ दूसरों के हिस्से का पवन-प्रकाश हड़पकर ऐश करनेवालों का दल सक्रिय था, तो दूसरी तरफ लोग अस्तित्व-रक्षा के साधन जुटाने में अपने श्रम-कौशल को झोंक रहे थे। भारतीय समाज की यह दशा अब कोई पाँच दशक बीत जाने के बाद भी बरकरार है। 'ड्राइंग रूम' कहानी ऐसे ही सामाजिक परिदृश्य का चित्र पेश करती है। कहानी की नायिका आइरीन का जीवन-संसार और कार्य-पद्धति हमारे समाज में आज भी बदस्तूर कायम है। यह कहानी उसी जीवन पद्धति से हमारे सुसुप्त मानस को जाग्रत करती है।

आइरीन को अपने पारिवारिक भरन-पोषण के लिए कोई नौकरी चाहिए, नौकरी पाने के लिए किसी महत्त्वपूर्ण व्यक्ति का 'रिकमेण्डेशन' चाहिए, 'रिकमेण्डेशन' के लिए उसे उस व्यक्ति को किसी भी तरह प्रभावित करना है, वह व्यक्ति कैसे प्रभावित होगा, यह आइरीन को मालूम नहीं है। वह दयानन्द को प्रभावित करने के तरीके का आविष्कार करती है, दयानन्द उस तरीके से प्रभावित नहीं होता है, वह दूसरे तरीके का आविष्कार करती है, तीर एकदम सही निशाने पर लगता है। वाकई आवश्यकता आविष्कार की जननी होती है।

यहाँ गौरतलब है कि कोई कहानी किन कारणों से महत्त्वपूर्ण होती है? घटना के विवरण मात्र से कहीं कहानी नहीं बन जाती। असल में घटना के विवरण का दृष्टिकोण कहानी को महत्त्वपूर्ण बनाता है, विवरण का दृष्टिकोण किसी लेखक के जीवन-दर्शन से निर्मित होता है और इसी दृष्टिकोण के संस्पर्श से कथाकार का कौशल निर्देशित होता है, बल्कि कथा-संरचना का स्वरूप भी इसी क्रम में निर्धारित होता है।

'ड्राइंग रूम' कहानी कथाकार के इसी विलक्षण दृष्टिकोण के कारण महत्त्वपूर्ण है, जो शिल्प, संरचना और भाषा फलक के स्तर पर विराट व्यंजना ध्वनित करती है। अकारण ही कथावाचक को आइरीन की माँ, मिसेज कैथरिन ठाकुर से मिलने और उसकी उस आत्मशक्ति जानने की इच्छा नहीं होती जिसके कारण वह अपना सब कुछ त्यागकर सदा के लिए यूरोप से यहाँ चली आई, या फिर वह शक्ति कैथरिन में नहीं, आइरीन के पिता में थी! कथाकार की शंका के कारण घटनाओं के बीच आया हुआ यह प्रसंग उस वातावरण की ओर इशारा करता है जिसमें एक यूरोपीय युवती, एक भारतीय युवक की ओर बीसवीं सदी के तीसरे दशक के उत्तरार्द्ध में अनुरक्त हुई होगी। इस चर्चा का तर्क यह है कि सन् 1960 में जिस दम्पत्ति की पहली सन्तान तीस वर्ष की आयु पूरी कर चुकी

है, उसकी प्राथमिक अनुरक्ति का समय यही रहा होगा। यह समय पूर्ण स्वराज की घोषणा, नमक सत्याग्रह, दाण्डी यात्रा, अवज्ञा आन्दोलन का समय था; गाँधी-इरविन समझौता, गोलमेज सम्मेलन, द्वितीय विश्व युद्ध आदि की पृष्ठभूमि का समय था, जिसमें गाँधीजी के किसी अनुयायी युवक की ओर किसी यूरोपीय युवती के अनुरक्त होने के पर्याप्त सूत्र दिखते हैं। आइरीन और उसके भाई-बहन ऐसी ही नैष्ठिक दम्पत्ति की सन्तानें हैं, जो स्वाधीन भारत के लोकतन्त्र में अनाज-पानी के देवताओं से अस्तित्व-रक्षा के संसाधन की भीख माँगती हैं। गौरतलब है कि भारत की लोकतान्त्रिक व्यवस्था की ऐसी कौन-सी परिस्थितियाँ रही होंगीं जिनसे आतंकित होकर आइरीन ने मान लिया होगा कि उस जैसी कर्मशील युवती को तीन सौ रुपए माहवारी की एक नौकरी पाने के लिए इतने तिकड़मों की आवश्यकता है? तीस वर्ष की आयु की जो आइरीन मैतिसी, ब्राक, पिकासो, हेनरी मूर, कालिदास की बात करती है, बीस-बाइस साल फ्रांस में रह आई है, अपने पाँच भाई-बहनों का भरण-पोषण करती है, वह भारत के एक अखबार के 'वूमन सैक्शन' की नौकरी में अपने चयन हेतु किस कारण आशंकित है? आशंकाओं के घटाटोप बादल से भरे समाज का एक पड़ोसी यदि कभी-कभी पाँच लावण्यमयी युवतियों से भरे घर की उस अभिभाविका को अपने बेयरे, या नौकरानी से काम लेने की इजाजत देकर अपनी उदारता दिखाता है, तो उसकी पृष्ठभूमि में कितनी आशंकाएँ होंगी?...परत-दर-परत सवाल उठता जाता है, प्याज के छिलके की तरह...राजकमल चौधरी की रचनाओं की यही खास बात है। इनके यहाँ घटना तो छोटी होती है, पर रचना-शिल्प और लेखकीय दृष्टिकोण के कारण उसका प्रभाव शिखर का हो जाता है।

11.6 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथाधारा और राजकमल चौधरी का कथालेखन

हिन्दी में राजकमल चौधरी की रचनाएं छठे दशक के उत्तरार्द्ध में प्रकाश में आते ही चकाचौंध पैदा करने लगी थीं। दरअसल सन् 1960 के बाद का दौर 'अकविता' और 'नई कहानी' का दौर था। उपेन्द्रनाथ अश्क, निर्मल वर्मा, मोहन राकेश, राजेंद्र यादव, कमलेश्वर, मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती आदि प्रेमचंद, यशपाल, जैनेन्द्र कुमार की परंपरा को और उर्दू के सआदत हसन मंटो, राजेंद्र सिंह बेदी, कृष्ण चंदर आदि की परंपरा को आगे बढ़ा रहे थे। उन्हीं दिनों राजेंद्र यादव कहानी कला के लिए परिभाषा के नए सूत्र गढ़ रहे थे। थोड़े ही दिनों बाद कमलेश्वर ने अलग कथाधारा की घोषणा कर दी, जो अपनी परिणति में 'नई कहानी' से किसी भी तरह अलग नहीं थी। उस दौर के अन्य रचनाकार भी किसी न किसी तरह कुछ-कुछ कर रहे थे। राजकमल चौधरी ने उस दौर में बगैर किसी घोषणा, वक्तव्य, और गुटबाजी के, जमकर कहानियां लिखीं और अपने कथा-कौशल के बूते आम पाठकों के मन-मिजाज पर छाए रहे।

बीसवीं शताब्दी के छठे दशक का मध्यांतर आते-आते हिन्दी कहानी आम नागरिक के मन में गंभीरता से झांकने लगी थी। भिखारी से दाता तक, रंक से राजा तक, क्रेता से विक्रेता तक, वेश्या से गृहस्थिन तक, संन्यासी से किसान तक उसके पात्र होने लगे थे और उस समय की कहानी उन सबके मानसिक उद्वेलन को उनके मौलिक व्यवहारों से जोड़ने लगी थी। व्यवस्था और समाज की तलहट में उसके काले हाशियों पर रहनेवाले चरित्र कहानियों में प्रमुखता से आने लगे।

हिन्दी में 'नई कहानी' आंदोलन का समय मोटे तौर पर 1950-1965 माना गया। फिर भैरव प्रसाद गुप्त के संपादन में प्रकाशित 'कहानी' के नववर्षांक में इसका प्रारंभ सन् 1956 में

कहा गया। यह भी कहा गया कि 1950 से ही 'नई कहानी' का प्रयाण शुरू हो गया था, विचार और रचनाशीलता के स्तर पर यह नयापन पलता-बढ़ता रहा और 1955-56 आते-आते वैसी सोच और वैसी रचनाशीलता के साथ सृजनरत लेखकों ने अपना परिचय कायम कर लिया और 'कहानी' (पत्रिका) के नववर्षांक (1956) में नई कहानी को पूर्ण प्रतिष्ठा दे दी गई। देवीशंकर अवस्थी के शब्दों में '1962 में हुआ यह विवाद नई कहानी को स्टैब्लिश ही नहीं करता स्टैब्लिशमेंट का हिस्सा बना देता है। इसके बावजूद 1962-65 के समय को नई कहानी की ढलान का समय कहा गया, यद्यपि कमलेश्वर जैसे कुछ स्थापित कथाकारों ने 1965 के बाद कहानियों में आए बदलाव को भी नई कहानी का ही विस्तार बताया।

भारत में 1962-65 के अंतराल में राजनीतिक-सामाजिक हलचलों से एक नया जोश अवश्य आया और रचनाकर्मी, नई ऊर्जा के साथ आगे बढ़े, नई कहानी के विरोध में 'अकहानी' आंदोलन सबसे आगे आया, पर आलोचकों ने जल्दी ही इसे फ्रांस की सन् साठ के बाद की 'एंटी-स्टोरी' का अनुकरण घोषित कर दिया। फिर 'सचेतन कहानी', 'सहज कहानी', 'समांतर कहानी', 'सक्रिय कहानी', 'समकालीन कहानी' जैसे कई आंदोलनों की घोषणाएं हुईं, जिन्होंने 'नई कहानी' और सन् साठ के बाद की कहानी की परंपरा से विद्रोह करने या उनसे अपने को अलग साबित करने का प्रयास किया। पर काफी लोगों को यह बात समझ में नहीं आई कि इन रचनाधर्मियों में यह वृत्ति क्यों आ गई, सृजनकार्य को प्रमुखता देने के बजाए ये लोग विज्ञापन में क्यों लिप्त हो गए।

राजकमल चौधरी की अब तक प्राप्त अड़तीस मैथिली तथा सौ हिन्दी कहानियों में राजनीति और अर्थनीति द्वारा मनुष्य और नैतिकता के साथ हो रहे मजाक साफ-साफ नजर आते हैं, उनकी कहानियों के पुरुष पात्र या तो स्त्री अंगों को चबा जाने वाले राक्षस नजर आते हैं, या मोल-भाव कर खरीद लेनेवाले व्यापारी। स्त्री पात्र या तो अपने को बेच-लुटा देने वाली निरीहा नजर आती हैं, या खुद को उदारतापूर्वक हाजिर करनेवाली आत्ममुग्ध गर्वोन्नता...। स्त्री के जितने रूप राजकमल चौधरी की कहानियों में दर्ज हैं, उतने हिन्दी ही नहीं, संभवतः किसी भी आधुनिक भारतीय भाषा में दुर्लभ होंगे। वे मैथिली से हिन्दी की ओर मुड़े थे, सम्भव है कि इसी कारण उनके नारी पात्रों के चित्रण में अक्सर मिथिलांचल का संकेत मिल जाता है।

नेता, अफसर, पुलिस, पत्रकार तो शहर के वासी हैं, निरंतर गांव में बसनेवाले जो लोग सामाजिक नियम कायदा के रखवाले होते हैं, कई बार उनका कायदा उन्हीं पर भारी पड़ जाता है। इस दशा के अनेक सबूत राजकमल की कहानियों में दर्ज हैं। सबसे पहले विधवाओं के जीवन से बात शुरू करें। मिथिलांचल की वर्ण-व्यवस्था की तरह विधवा भी एक विचित्र किस्म की जाति है, वह न तो जीने के लिए स्वतंत्र है, न मरने के लिए। स्त्री का भी क्या जीवन है, जब तक सधवा रहेगी, पति उसका शासक रहेगा; ज्यों ही वह विधवा होगी, पूरा परिवार, पूरा समाज उसका शासक हो जाता है, पूरे गांव की नजर उसकी देह पर रहती है, पर आभास कुछ और देता है। उनके इशारों पर वह स्त्री नहीं चली, तो परिवार-समाज उसे वेश्या और जवानी ढल जाने पर डायन घोषित कर देगा। चौधरी की कहानियों ने समाज के प्रभु वर्ग की इस दृष्टि की आलोचना की है।

उनकी कहानियों में स्त्रियों के विविध रूपों के साथ-साथ पुरुष वर्चस्व पर भी नजर दी गई है। सामाजिक सुरक्षा, दैहिक रक्षा, दैहिक आवेग, संतान, परिवार आदि के स्तर पर

स्त्रियों का जीवन पुरुषों पर आश्रित रहा है। इनमें से किसी भी स्थिति से वशीभूत स्त्री, अपने को एक पुरुष को सौंपकर सुरक्षित महसूस करती है। जिस स्त्री के साथ यह सुरक्षा नहीं है, वह लुटती-बिकती रहती है। पर इससे अलग किस्म की स्त्रियां भी हैं, जिनके पास ये सारी सुरक्षाएं हैं, पर उनके जीवन में स्थिरता नहीं है। जिन स्त्रियों के लिए 'देह' से बड़ी नैतिकता कुछ भी न हो, आधुनिक समाज की अति आधुनिकता के यथार्थ का वह भी अकाट्य पहलू है।

राजकमल चौधरी की मैथिली और हिन्दी की कहानियों में स्त्रियां एक तरफ देह बेचकर जीवनयापन करती हैं, दूसरी तरफ जिन्दगी के जद्दोजहद से जूझकर खुद को सुरक्षित भी रखती हैं। स्त्रियों का एक वर्ग अपने ही घर में यौन-अत्याचार झेलती है, तो दूसरे वर्ग की स्त्रियों की सबसे बड़ी मजबूरी उसकी देह और क्षणिक आवेग ही है।

राजकमल चौधरी की नजर में ये परिस्थितियां एक हूक पैदा करती रहीं, उस हूक से खुद को और अपने नागरिक परिदृश्य को मुक्त करने हेतु उन्होंने कहानियों में ऐसे चरित्र गढ़े, जिसने समकालीन समाज को जीवनबोध दिया। उनकी हर कहानी कथ्य, शिल्प, कथोपकथन, चरित्र-चित्रण के सहारे समकालीन जीवन की जटिलताओं को उजागर करती है। इन दिनों दलित-प्रश्न, स्त्री-विमर्श, लिंगभेद, बाजारवाद, प्रति-आख्यान(एण्टीनैरेटिव्स) की खूब चर्चा हो रही है, ये सारे विषय आज के बुद्धिजीवियों के मुख्य सरोकार हैं। कहानियों में और ज्यादातर साहित्यिक अथवा साहित्येतर लेखों में भी इन दिनों ये मसले प्रमुखता से आते हैं। राजकमल चौधरी की कहानियां इन प्रसंगों के संकेत आज से पैंतालीस बरस पूर्व दे चुकी हैं। इन सबके अलावा कथाकार की प्रतिबद्धता और कथ्य-शिल्प के प्रति लेखकीय सावधानी अलग से गौरतलब है। उनकी कहानियों में अंकित समाज का नागरिक, अपनी जीवन-व्यवस्था को स्वयं तय करता है; वह किसी प्रभु-वर्ग द्वारा निर्धारित नियमों या उसकी घोषणाओं की परवाह नहीं करता; बल्कि उत्तर-उपनिवेशवाद के प्रति-आख्यानों के आलोक में वह स्वयं प्रभु-वर्ग की जीवन-व्यवस्था की गहरी आलोचना करता है। जिस तरह की सुख-सुविधा और दुख-दुविधा में वह जीवन-यापन करता है, उसके प्रति वह पूरी तरह आश्वस्त और तर्क-सम्मत होता है; अस्तित्व-रक्षा और जीवन-यापन के क्रम में वह जिन संकटों से जूझता है, उनमें वह पराजित और मजबूर नहीं होता; अपने लिए नई मान्यताओं के साथ, नए रास्ते तलाशता है। उनकी कहानियों के चरित्र-चाहे वह स्त्री हो, दलित हो, अछूत हो, शिशु हो, भिखारी हो, कामगार हो, बेरोजगारी की चक्की में पिसता युवा-वर्ग हो, आवारा-चोर-बदमाश हो, दलाल-लुटेरा हो...सब के सब, यही करते हैं। इस अर्थ में राजकमल चौधरी की कहानियां आज भी उतनी ही प्रासंगिक हैं, जितनी कोई चालीस वर्ष पूर्व थीं।

आज के भारत का नागरिक-जीवन संवेदना के स्तर पर बड़ी उथल-पुथल के दौर से गुजर रहा है। एक तरफ नैतिकता, मानवीयता, राष्ट्रीयता, सांस्कृतिक मूल्यों के परिरक्षण, और सभ्य-सामाजिकता की दुहाई दी जा रही है; दूसरी तरफ बाजार के साम्राज्य में झूठ, तस्करी, फरेब, बलात्कार, गबन, घोटाले, घूसखोरी, स्त्री-अंगों की दलाली, राष्ट्र और मातृभाषा से विमुखता...का धंधा चल रहा है। इस विद्रूप परिस्थिति में हर कोई अपनी-अपनी समाज-व्यवस्थाओं या कि समांतर व्यवस्थाओं के निर्माण में लिप्त है और उन्हें अपने-अपने तर्क से उचित ठहरा रहे हैं। पाप-पुण्य, ईमान-धरम, उचित-अनुचित, संबंध-बंध, श्लील-अश्लील, नीति-अनीति...सबकी परिभाषाएं बदल और उलट गई हैं। पुरानी

समाज-व्यवस्था और आचार-पद्धति खंड-खंड हो रही है। नई-नई व्यवस्थाओं को नई प्रतिष्ठा मिली है। राजकमल चौधरी की कहानियों में पुराने मूल्यों के टूटने और नई व्यवस्थाओं के बनने की आहटें सुनी जा सकती हैं। उनमें एक साथ व्यवस्था विखंडन, और नव-व्यवस्था के स्थापन की प्रक्रियाएं हैं। शायद इसीलिए राजकमल चौधरी की कहानियां समय के साथ पुरानी नहीं पड़ी हैं।

11.7 राजकमल चौधरी का कथा-शिल्प

अपने समकालीन रचनाकर्मियों के कथेतर आचरणों पर खीजकर उन्होंने कहा--कहानी के बारे में तरह-तरह की परिभाषाएं गढ़ी जा रही हैं। ...आज की कहानी में (जिसे मैं 'नई कहानी' की संज्ञा नहीं देना चाहता हूं) हम साहित्य की अन्य विधाओं की तरह ही परंपरागत तौर तरीकों और रीति को छोड़कर आगे आ रहे हैं। पहले कहानी की निश्चित सीमाएं थीं; घटना की सीमा, चरित्र की सीमा, कथानक की सीमा, क्लाइमेक्स की सीमा। तरह-तरह की सीमाएं। आज हम इन सीमाओं में बंधे रहना जरूरी नहीं समझते हैं। इस युग में आकर कविता और कहानी बहुत हद तक चित्रकला और संगीत के निकट आ गई है।...

राजकमल चौधरी की कहानियां शिल्प के स्तर पर भी उनके इस कथन को पुष्ट करती हैं और कथा लेखन की नवता, ताजगी, चित्रात्मकता, काव्यात्मकता, लयात्मकता, विविधता इत्यादि को प्रमाणित करती हैं। उनकी कहानियां भावकों को उतनी देर के लिए दुनिया से काट देती हैं, यहां तक की उसे साहित्य की विधा तय करने के अभिज्ञान से भी निरपेक्ष रखती हैं। भावक को सिर्फ वह पाठ याद रहता है, जिसे वह पढ़ रहा होता है। उनकी कहानियों के इस सम्मोहन का मूल कारण कथाकार का जन सरोकार और कथ्य के साथ भाषा और शिल्प का व्यवहार ही है। अचानक कहीं से कथा का शुरू हो जाना, अचानक कहीं खत्म कर देना। कभी आंख मूंदकर सुनें तो नाटक या चलचित्र का आभास हो, कभी बोलकर पढ़ें, तो कविता की ध्वनियां और लय गूंजे, कभी तेजी से भागती दृश्यावली लगे शिल्प की इतनी विविधताएं उनकी कहानियों में हैं कि कोई एक दूसरे से मेल नहीं खाता। सबसे रोचक यह है कि सारी मनमानियां करने के बावजूद उनकी कहानियों का कहानीपन आहत नहीं होता, निरंतर भावकों पर कथा और कथाकार का नियंत्रण बना रहता है। शिल्प का यह जादुई सम्मोहन भारतीय भाषाओं के उस दौर के कथाकारों के यहां मुश्किल से मिलता था। बीसवीं शताब्दी के पश्चिमी साहित्य में 'आधुनिकता' को लेकर शिल्प, शैली संबंधी जितने भी प्रयोग हुए हैं, उसके सारे संकेत यहां दिखते हैं।

11.8 राजकमल चौधरी की कथा-भाषा

राजकमल चौधरी अपनी तमाम रचनाओं में भाषा के जादूगर दिखते हैं। भाषाई सम्मोहन उनकी रचना का मूल धर्म है। काव्यमयता, चित्रात्मकता और संगीतमयता उनके भाषा-फलक की खास विशेषता है। कहानी ही नहीं, उनके द्वारा लिखी गई साहित्यिक आलोचना, वैचारिक निबन्ध और पत्र-डायरी तक में यह काव्यमयता, चित्रात्मकता, और संगीतमयता मौजूद रहती है। इसी कहानी के एक अंश का उदाहरण देख—'आइरीन का धुला हुआ चेहरा मुझे अच्छा लगा। चेहरे पर जरा भी मेकअप नहीं था, फिर भी नहीं लग रहा था कि उसकी उम्र तीस पार कर चुकी है। बिना बाँहों वाली लो-कट ब्लाउज और खादी की सफेद साड़ी में जरा भी विदेशिनी नहीं दिखती थी। मैंने सुना था, आइरीन बीस-बाइस साल फ्रांस में रह रह चुकी है। मगर, चेहरे पर या शरीर पर कहीं फ्रांस नहीं था, यूरोप नहीं था। बाल खुले थे और पीठ पर कमर से नीचे फैल रहे थे। बाँहें खुली थीं और

संगमरमर की बनी मालूम होती थीं।' पढ़ते हुए ऐसा प्रतीत होता है, जैसे कोई पेण्टिंग देख रहे हों। काव्यमयता, चित्रात्मकता और संगीतमयता का ऐसा अनुपम उदाहरण उनकी रचनाओं में सर्वत्र व्याप्त है। 'नई कहानी' के विषय में बात करते हुए उन्होंने खुद कहा भी है कि 'इस युग में आकर कविता और कहानी बहुत हद तक चित्रकला और संगीत के निकट आ गई है।' चित्र का लालित्य और संगीत की मनोहरता उनकी हर रचना में मिलती है। पर इस क्रम में वे बहुपरतीय अर्थध्वनियाँ भरना भी नहीं भूलते। उनके रचना-कौशल की यह भी एक खास विलक्षणता है। इसी कहानी में जब आइरीन अपनी बहनों के शौक-मनोरथ और अपनी सादगी का प्रभावशाली वर्णन करते-करते चाँदी के बने लड़कीनुमा गुलदस्ते से एक फूल निकालती है, वहाँ का विवरण इस प्रकार हैं– 'आइरीन ने चाँदी की लड़की के हाथों से एक गुलाब छीन लिया और उँगलियाँ फेरती रही। एक-दो पत्ते टूट गए।' ध्यातव्य है कि यहाँ उन्होंने पत्ते कहा, पंखुरियाँ नहीं कहा। ये पत्ते असल में उस फूल के नहीं हैं, आइरीन के प्रयास के हैं, जो उसकी पुरजोर कोशिश के बावजूद, उँगलियों के कोमल संस्पर्श से सहलाते रहने के बावजूद पंखुरियाँ टूट जाती हैं, प्रभाव जमने के बजाए उखड़ जाते हैं। क्योंकि उसके तत्काल बाद वे कहते हैं–'मैं आपको रिकमेण्ड नहीं कर सकूँगा, मिस आइरीन!' अन्यत्र भी इस तरह के असंख्य उदाहरण मौजूद हैं। उनकी भाषा के चमत्कार का यह विशिष्ट पक्ष है कि उनका कोई भी शब्द अतिरिक्त नहीं होता। बड़ी ही घनीभूत भाषा की संरचना उनके यहाँ मौजूद रहती है। यहाँ तक कि यति-विराम तक में कोई न कोई महत्त्वपूर्ण अर्थध्वनि छिपी रहती है। वस्तुतः उनकी कहानियाँ घनीभूत भाषा संरचना की इन्हीं अर्थध्वनियों से चमत्कार और व्यंजनाओं का वैराट्य उत्पन्न करती हैं।

11.9 सारांश

सन् 1960 के आसपास लिखी गई राजकमल चौधरी की कहानी 'ड्राइंग रूम' एक महत्त्वपूर्ण रचना है, जिसमें आजादी के दशक भर बाद के लोकतन्त्र में आम नागरिक के जीवन में प्रविष्ट छद्म को बेनकाब किया गया है। यह वह समय है, जब पूरे देश की प्रबन्धन व्यवस्था अपनी अन्तर्राष्ट्रीय पहचान की चमक-दमक में व्यस्त थी और इधर आम भारतीय नागरिक जीवन-यापन की बुनियादी सुविधा जुटाने और अस्तित्व रक्षा के संसाधन तलाशने में तत्पर था। परिदृश्य की विडम्बना और विरोधाभास के सहारे इस कहानी में एक मामूली घटना में विराट व्यंजना भरी गई है। कथानायिका आइरीन को अपने पारिवारिक भरन-पोषण के लिए कोई नौकरी चाहिए, नौकरी पाने के लिए किसी महत्त्वपूर्ण व्यक्ति का 'रिकमेण्डेशन' चाहिए, 'रिकमेण्डेशन' के लिए उसे उस व्यक्ति को किसी भी तरह प्रभावित करना है, वह व्यक्ति कैसे प्रभावित होगा, यह आइरीन को मालूम नहीं है। वह उस व्यक्ति को प्रभावित करने के तरीके का आविष्कार करती है, व्यक्ति उस तरीके से प्रभावित नहीं होता है, वह दूसरे तरीके का आविष्कार करती है, तीर एकदम सही निशाने पर लगता है। इस पूरे प्रयास में विलक्षण भाषा-शिल्प के साथ कथाकार जो बिम्ब गढ़ते हैं, कथानायिका और कथा-परिदृश्य के नागरिक जीवन का जैसा चित्र बनाते हैं, वह दंग कर देता है। वास्तविकता और प्रदर्शन के बीच का विरोधाभास; और ऐसा करने की मानवीय मजबूरियाँ एक बड़ी विडम्बना के साथ यहाँ पेश आती हैं। जीवन-यापन के नाटक में मनुष्य को बार-बार यह नाटक खेलना पड़ता है, सामाजिक परिस्थिति में खुद को फिट करने हेतु, अपने अस्तित्व की रक्षा, और अपनी नाटकीय अस्मिता का संकेत देने हेतु मनुष्य को पल-पल स्वांगों में लीन रहना पड़ता है-यह कहानी इस विडम्बना का बेहतरीन उदाहरण है। आज के समाज में यह व्यवस्था और भी लचर हो गई है।

आडम्बर और खोखलेपन के इस शीर्ष उदाहरण से आइरीन की चतुराई, लाचारी, और लक्ष्य केन्द्रित कौशल तो दिखता है-पर इसमें उसकी छवि सम्पूर्णता में ऊँची हो जाती है, और सामाजिक व्यवस्था की घिनौनी सूरत सामने आ जाती है। राजकमल चौधरी के कथा-कौशल के विलक्षण प्रतिमान के साथ यह कहानी एक महत्त्वपूर्ण सन्देश देती है, छोटे-से कथ्य पर घनीभूत कौशल के साथ यह एक जानदार और प्रभावकारी कहानी है।

11.10 अभ्यास

1. हिन्दी साहित्य-धारा में राजकमल चौधरी के अवदान का मूल्यांकन कीजिए।
2. मध्यवर्गीय जीवन की विडम्बनाओं के आलोक में 'ड्राइंग रूम' कहानी की समीक्षा कीजिए।
3. जीवन-मूल्य और सामाजिक जीवन के चरम यथार्थ के चित्रण के रूप में 'ड्राइंग रूम' कहानी की दार्शनिकता पर विचार कीजिए।
4. कथ्य और रचना-शिल्प नूतनता के सन्दर्भ में राजकमल चौधरी के साहित्यिक अवदान को रेखांकित कीजिए।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 12 क्लॉड ईथरली : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 मुक्तिबोध की कहानी और नई कहानी

12.3 मुक्तिबोध की सामाजिक दृष्टि

12.4 सांस्कृतिक क्षेत्र में उपनिवेश

12.5 फैंटसी और मुक्तिबोध की कहानी

12.6 मुक्तिबोध के पात्र और सामाजिक मूल्य

12.7 सारांश

12.8 अभ्यास

12.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप हिन्दी के महान कहानीकार मुक्तिबोध की कहानी-कला का परिचय प्राप्त करेंगे/करेंगी। मुक्तिबोध की एक सशक्त कहानी 'क्लॉड ईथरली' पाठ हेतु आपके सामने हैं। इस इकाई के अध्ययन के बाद आपः

- नई कहानी आन्दोलन की सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक पृष्ठभूमि का परिचय प्राप्त करेंगे/करेंगी।
- नई कहानी आन्दोलन और मुक्तिबोध के कहानी साहित्य का परिचय प्राप्त करेंगे/करेंगी।
- 'क्लॉड ईथरली' कहानी के माध्यम से अणुयुद्ध की भीषणता से अवगत हो सकेंगे/सकेंगी।
- 'क्लॉड ईथरली' में अभिव्यक्त मुक्तिबोध की सामाजिक दृष्टि को समझ सकेंगे/सकेगी।
- सांस्कृतिक क्षेत्र में होने वाले उपनिवेश से परिचित हो जाएँगे/जाएँगी।
- मुक्तिबोध की कहानी में प्रयुक्त फैंटसी को समझ सकेंगे/सकेंगी।
- मुक्तिबोध के पात्रों के सामाजिक मूल्यों से परिचित होंगे/होंगी।

12.1 प्रस्तावना

हिन्दी के कवि-कहानीकारों में अग्रणी रचनाकार मुक्तिबोध की कहानियाँ वास्तविक जीवनाभुभवों तथा मानवीय मूल्यों के मार्मिक आकलन से संपन्न है। तत्कालीन यथार्थ को युगीन परिवेश की विषमताओं से जोड़कर बृहत्तर सामाजिक सन्दर्भ में प्रस्तुत करना मुक्तिबोध की विशेषता हैं। आपकी रचनायें संवेदनशील व्यक्ति की आत्मा को बेचैन करके, जनवादी चेतना को आवेग और रफ्तार देने में सक्षम है। एक जनवादी कहानीकार होने के नाते अपने समय की भयानक सच्चाई की अभिव्यक्ति करना अपनी जिम्मेदारी के रूप में उन्होंने स्वीकार किया है। यथार्थ चित्रण और आत्म संघर्ष के दोहरे स्तर पर अपने को जनता के साथ जोडकर, शोषक व्यवस्था के खिलाफ लड़ने का कार्य आप निरन्तर करते

रहे थे, मध्यवर्ग के आत्म संघर्ष की स्वाभाविक अभिव्यक्ति आपकी कहानियों में मुखर है।

बाजारू संस्कृति, भारतीय जनमानस में पूरी ताकत के साथ अपनी जडें गहराई में धंसा चुकी है। बाजारू फाँसीवाद नये-नये विज्ञापनों के माध्यम से अपनी अस्मिता कायम रखने के लिए विभिन्न तकनीकों को आत्मसाथ करके खतरनाक और समाज विरोधी तत्वों को प्रोत्साहन दे रही है। बाजारू संस्कृति में फिलहाल सबसे अधिक बिकने वाली वस्तु आम आदमी को करोड़पति बनाने का सपना है। विख्यात कवि-कहानीकार उदयप्रकाश ने बाजार सम्बंधी अपना दृष्टिकोण इस प्रकार व्यक्त किया है- 'मैं बाजार का विरोधी नहीं हूँ, लेकिन मार्केट कोई कलोक्टीव ड्रीम नहीं है। यह कोई युटोपिया नहीं है, इसमें कोई सपना नहीं देखा जा सकता। इसमें ऐसा कुछ नही है जो उदास, विराट और नैतिक हो। मुनाफा, नगदी, लाभ, घाटा इसके सारे इनग्रेडिएंटस घटिया, क्षुद्र और छोटे है। यह लालच, ठगी, होड, स्वार्थ और लूट खसोट के मनोविज्ञान से परिचालित होता है।' (उदयप्रकाश, पीली छतरी वाली लड़की, पृष्ठ-10) उपनिवेशी ताकतों को अपनी योजनाओं की व्यावहारिक सफलता के लिए अचूक औजारों को चुनना जरूरी है। वे मध्यवर्ग के मन में लालच तथा मोह का जहरीला बीज बोकर उन्हें बाजोरोन्मुख बना देते हैं। जाने अनजाने समाज के हर तबके के लोग उपनिवेशवादी संस्कृति का समर्थक होकर उसका शिकार हो जाते हैं। 'डिवाइड एण्ड रूल' का सिद्धान्त नव उपनिवेशवाद के पुरोधाओं ने बडी बारीकी से लागू किया है क्योंकि बाजार को पनपने के लिए यह नितांत अनिवार्य है।

बाजारीकृत समाज व्यवस्था ने ही वर्तमान समाज में मूल्यहीनता तथा संवेदन शून्यता को बढ़ावा दिया है। 'तो यह भूमणडलीकरण हो रहा है उन्हीं के लिए है, जो विश्व बाजार के हिस्से है। सटोरिये, व्यापारी, तस्कर, अपराधी या सरकारी मंत्री-अफसर।' (उदयप्रकाश, पीली छतरी वाली लडकी, पृष्ठ-20) आर्थिक उदारीकरण ने समाज को बाजोरोन्मुख बना दिया। भोगो-फेंको वाली सभ्यता के लिए जोर पकडने यह एक सशक्त कारण बना है। लाभेच्छा से ग्रस्त बहुराष्ट्रीय कंपनियों की लोलुपता ने सबसे पहले तीसरी दुनिया के छोटे-छोटे देशों को अपनी मण्डी बनाया है। अधिक से अधिक मुनाफा कमाना उनका लक्ष्य रहा है। दूसरे विश्वयुद्ध के यथार्थ कारणों की खोज करे तो अमरीका तथा ब्रिटेन के स्वार्थपरता तक आसानी से पहुँचा जा सकता है। विश्व के कोने कोने में अशान्ति और असुरक्षा बनाये रखने से ही युद्ध की भीषणता कायम रहेगी। युद्धोपकरणों तथा औजारों के निर्माता देशों की प्रमुख आमदनी इसी धंधे से होती है। किसी भी मायने में राष्ट्रों की सीमा इलाकों में संघर्ष बनाए रखना इन देशों की आर्थिक अस्मिता के लिए निहायत जरूरी है।

12.2 मुक्तिबोध की कहानी और नई कहानी

नई कहानी ने इतिहास बोध को तत्कालीन संकट के विभिन्न युद्धों को उजागरित करने के एक सक्षम उपकरण के रूप में प्रयुक्त किया है। सत्ता के साम्राज्यवादी अभिनिवेशों और बाजारीकरण की उभरती संस्कृति के बीच अपनी अस्मिता की चिन्ता में तडपती आम आदमी की कटु नियति को उसकी विकरालता के साथ नई कहानी ने दर्शाया है। तत्कालीन समाज के सामने प्रश्न चिह्न खडा करनेवाली विडंबनाओं के विभिन्न पहलुओं को नई कहानी ने अभिव्यक्त किया है। राजनीतिक और सांस्कृतिक विलक्षणता का उद्घाटन करने में नई कहानी सक्षम रही हैं।

मुक्तिबोध को हमेशा ऐसा अहसास होता था कि हम किसी एक देश के नागरिक नही

एक विशाल विश्व के नागरिक है, अतः विश्व के हरेक नागरिक का दुःख-दर्द कहानीकार की अपनी वेदना है, और उस वेदना को आत्मसात करके पाठकों तक संप्रेषित करने में आप अन्त तक लड़ते रहे थे।

साम्राज्यवादी शक्तियों के क्रूर व्यवहार के शिकार लोग अपने मन की सच्चाइयों तथा भद्र विचारों को भी अन्तर्मन में ही दबाकर वर्तमान समाज की रीतियों में तब्दील हो जाते हैं। यही बाजारू सभ्यता का असर है। मार्केट की नृशंसता व्यक्त करती हुई मशहुर लेखिका ममता कालिया ने बताया है - 'दरअसल बाजार के अर्थशास्त्र में नैतिकता जैसा शब्द लाकर, तुम कनफ्यूजन फैला रही हो। मैने अब तक पाँच सौ किताबे तो मैनेजमेंट और मार्केटिंग पर पढ़ी होगी। उन में नैतिकता पर कोई चाप्टर नहीं है।' (ममता कालिया, दौड़, पृष्ठ 39)। बाजार में हर वस्तु का, कीमत के अनुसार आदान प्रदान होता है। बाजार का कोई सनातन मूल्य नहीं होता है। उसका एक मात्र मापदण्ड मुनाफा है। बाजारू सभ्यता में व्यक्ति को बाजार के अनुकूल होना चाहिए। बाजार के योग्य व्यक्ति ही समाज में जीने का हकदार है- 'हमारे अपने-अपने मन हृदय-मस्तिष्क में एक ऐसा पागलखाना है, जहाँ हम उन उच्च, पवित्र और विद्रोही विचारों और भावों को फेक देते हैं जिससे कि धीरे-धीरे या तो खुद बदलकर समझौता वादी पोशाक पहन सभ्य, भद्र हो जाएँ, यानी दुरुस्त हो जाएँ, या उसी पागलखाने में पडे रहे।' बाजारू मानसिकता से दुविधा ग्रस्त व्यक्ति, फ्रान्स काफ्का की बहुचर्चित कहानी ''मेटमोरफोजिस'' का नायक ग्रिगर सांमसा की अवस्था में बदल जाने की विडंबना की पीड़ा भोगता है। बाजारवाद के इसी संदर्भ में मुक्तिबोध की कहानी भी महत्वपूर्ण है।

12.3 मुक्तिबोध की सामाजिक दृष्टि

अणुयद्ध की भीषणता को उन्मीलित करनेवाली मुक्तिबोध की एक मार्मिक कहानी है 'क्लॉड ईथरली'। 'क्लॉड ईथरली' के माध्यम से मुक्तिबोध ने धनी देशों की स्वार्थपरता एवं षडयंत्रयुक्त चेहरे की पोल खोली है। युद्धोन्मुखी मानसिकता में मानवीय मूल्यों तथा धार्मिक भावनाओं की कोई संभावना नहीं है। आजकल हमारे अवचेतन में हमारी आत्मा आ गयी है। चेतन में स्व-हित और अधिचेतन में समाज से सांमजस्य का आदर्श भले ही वह बुरा समाज क्यों न हो। यही आज के जीवन-विवेक का रहस्य है। अपरिभाषित भय का निर्माण करना साम्राज्यवादियों की साजिश है। क्योंकि उनका अपना कोई चेहरा नहीं है और उस भय को वे भूख के भय से भी ज्यादा असरदार बनाये रखेंगे। जनाना-जिस्म के आदमी के बयान से कथावाचक को पता चलता है कि वहाँ एक पागलखाना है। वे दोनों रास्ता पार कर फैशनबल रास्ते पर आ गये, जिसके दोनों ओर युकालिप्टस के पेड कतार बाँधे खडे थे। वह फैशनबल रास्ता पागलखाने की ओर जानेवाला रास्ता था।

उस पागलखाने में कई ऐसे लोग डाल दिए गये थे जो आज की निगाह से बडे पागल है। जनाना आदमी ने वर्तमान समाज के एक कठिन सत्य का उद्घाटन करते हुए कहा- 'जो आदमी आत्मा की आवाज जरूरत से ज्यादा सुन सके हमेशा बेचैन रहा करता है। और उस बेचैनी में भीतर के हुक्म का पालन करता है। वह निहायत पागल है। पुराने जमाने में सन्त हो सकता था। आजकल उसे पागलखाने में डाल दिया जाता है।' जनाना आदमी ने क्लॉड ईथरली को एक सन्त के रूप में प्रस्तुत किया है। क्लॉड ईथरली जो कि एक रोमन कैथालिक आदिवासी ईसाई है। अमरीका के विमान चालक क्लॉड ईथरली ने ही हिरोशिमा पर एटम बम गिराया था। मलबे में बदले हिरोशिमा की हालत देखने पर उसके मन में करुणा उमड आयी है। उनको पता नहीं था कि उनके हाथ में जो हथियार था और उससे इतना बडा अन्जाम होगा। हिरोशिमा के निरपराध लोगों के शवों, लोथों और कटे-पिटे शरीरों को देखने पर उनके मन में पाप बोध जाग्रत हो गया। उसने अपना

अपराध कबूल लिया। लेकिन अमरीकी सरकार ने उसे इनाम देकर वार हीरो घोषित किया। उन्होंने जो जघन्य अपराध किया है। वह वार हीरो की उपाधि देने से देशहित में बदल गया है, लेकिन क्लॉड ईथरली, पाप बोध के कारण दण्ड स्वीकार करके जेल जाना चाहता है, और उसके लिए वह तरह तरह के वारदातें करते हैं। लेकिन वार हीरो के टैटिल से आभूषित क्लॉड ईथरली को हर बार छोड दिया जाता हैं। क्लॉड ईथरली मन की गहराइयों में दबा दी जाने वाली आत्मा की आवाज सुनने वाले लोगों में है तथा सचेत, जागरूक और संवेदन शील लोगों का प्रतिनिधि भी है।

12.4 सांस्कृतिक क्षेत्र में उपनिवेश

'क्लॉड ईथराली' कहानी में जनाना जिस्म के आदमी के माध्यम से कहानीकार ने चेतावनी दी है कि– 'भारत के हर बड़े नगर में एक-एक अमरीका है'। चर्चित लेखिका अलका सरावगी ने भी साम्राज्यवाद के भारतीय घरों में प्रवेश को इस तरह व्यक्त किया है– इंडिया के बीस करोड घरों में से करीब साढे सोलह करोड घरों के अन्दर हिन्दुस्तान लीवर कुछ-न-कुछ छोटा-मोटा सामान जैसे कि तेल या साबून लेकर घुसा हुआ है। (अलका सरावगी, एक ब्रेक के बाद, पृष्ठ-17)। उसके सबूत प्रस्तुत करते हुए जनाना आदमी ने कहा- लाल ओठ वाली चमकदार गोरी-सुनहली औरतें, उनके कीमती कपडे शानदार मोटरों में घूमनेवाले अतिशिक्षित लोग, नफीस किस्म की वेश्यावृत्ति, सेमिनार, हमारे पास उतने ही एटम बम, हाइड्रोजन बम, रॉकेट ये सब अमरीका का ही निशान है। अलका सरावगी ने रेखाकित किया है– 'बंगलोर अब सिलिकोन वैली बन गया है, हैदराबाद सैबराबाद है, और चेन्नेई गाडियो के कारखाने का ड्रीडटोयट, तिरुपूर नया मानचेस्टर बन गया है। (अलका सरावगी, एक ब्रेक के बाद, पृष्ठ-74) मैकमिलन ने अपने एक भाषण में व्यक्त किया है– 'यह देश हमारे सैनिक गुट में तो नहीं है, किन्तु संस्कृति और आत्मा से हमारे साथ है। स्वतंत्रता प्राप्ति तक साम्राज्यवादी ताकतों को कॉलोनी देशों में उनकी वास्तविक मौजूदगी की जरूरत थी, इन्फ्रोमेशन टेकनॉलॉजी के इस हाईस्पीड जमाने में नव उपनिवेशी शक्तियों को दलालों की जरूरत नहीं, वह काम टेकनॉलॉजी करेगी। बहुराष्ट्रीय कंपनियों की आड़ में बाजारू उपनिवेशवाद ने जोर पकड़ा है। भारत की हर चीज को उन लोगों ने नगण्य, तुच्छ तथा गवारू घोषित किया। भूमण्डलीकरण साम्राज्यवाद का सबसे तेज और अचूक उपकरण है। भारत के अधिकांश बुद्धिजीवियों को भी साम्राज्यवाद के इस उपकरण ने वशीभूत कर लिया है।' इस सन्दर्भ में कवि ज्ञानेन्द्रपति ने सही कहा है-

'.....हिमालय के होते भी तुम्हारे सिरहाने

हथेली-भर की एक साबून की टिकिया से

हार गई तुम युद्ध।' (गंगातट, नदी और साबून (एक), पृष्ठ-19)

गंगा के प्रदूषण के कारणो की ओर इशारा करके उस पर स्वार्थी लोगों ने बनाये कारखानों के योगदान को कवि ने यहाँ व्यक्त किया है। हिमालय के होने का मतलब भारतीय संस्कृति की महान परंपरा को व्यक्त करना ही है। यही संस्कृति उपनिवेशी ताकतों के सामने हार जाती है।

साम्राज्यवाद की पकड केवल आर्थिक तथा राजनीतिक क्षेत्र तक सीमित नहीं है, बल्कि सांस्कृतिक तथा साहित्यिक क्षेत्र में भी यह सक्रिय है। जनाना आदमी ने कहा। 'यही कारण है कि आजकल के लेखक और कवि अमरीकी, ब्रिटीश, पश्चिम यूरोपीय साहित्य

तथा विचारधाराओं में गोते लगाते है और वहाँ से अपनी आत्मा को शिक्षा और संस्कृति प्रदान करते हैं। 'पूँजी का आयात-निर्यात का गठबन्धन मात्र एक देश तक सीमित नहीं, वह विश्व व्यापी है। इसका नतीजा यह निकला कि कोई भी देश चाहे वह गरीब हो या अमीर उसके शिकंजे से मुक्त नहीं है। पूँजी का निवेश जो कि बाजार तक सीमित नही होता है, सांस्कृतिक और साहित्यिक क्षेत्र में भी इसकी जबरदस्त पकड है। भौगोलीकरण की वैचारिक भूमिका तैयार करने मे सांस्कृतिक क्षेत्र का महत्वपूर्ण योगदान है। जिस अनुपात में बहुराष्ट्रीय कंपनियों की पूँजी का निवेश भारतीय बाजार में हुआ है उसी अनुपात में पूँजीपति वर्ग का भी यहाँ विकास होता रहता है। शोषक वर्ग का साम्राज्यवाद और बाजारू उपनिवेश के साथ एक अदृश्य गठबन्धन कायम है। 'एक जमाने हम लन्दन जाते थे और इंग्लैण्ड-रिटर्न कहलाते थे।' अपने मानसिक संघर्ष को व्यक्त करते हुए कथावाचक ने कहा कि- 'हमारे राष्ट्रीय अखबार और प्रकाशन केन्द्र ने हमारी विचारधारा तथा दृष्टिकोण को पश्चिमी विचारधारा के साथ जोड दिया है। ब्रिटिश-अमरीकी कविता का जो मूड्स या जो मनस्थितियाँ रहती है बस वे ही हमारे यहाँ भी लायी जाती है। 'मुक्तिबोध ने सांस्कृतिक क्षेत्र के उपनिवेश को राजनीतिक तथा आर्थिक क्षेत्र के उपनिवेश से ज्यादा खतरनाक माना है।'

बाजारवादी उपनिवेश के शिकंजे में पड़ा व्यक्ति अपने को उस जंजाल से मुक्त करने का अथक परिश्रम तो जरूर करता है, लेकिन वह असफल ही हो जाता है। अपने को सफल ईमानदार एवं संवेदनशील बनाये रखने के प्रयास में वह खुद को खो देता है। वर्तमान समाज की इस खोखली मूल्य व्यवस्था में आम आदमी खुद को जाने-अनजाने प्रवंचन में धकेल देता है। कथावाचक का अनुभव इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। 'पता नही क्यों, मैं बहुत ईमानदारी की जिन्दगी जीता हूँ, झूठ नही बोला करता, परस्त्री को नहीं देखता, रिश्वत नही लेता भ्रष्टाचारी नही हूँ, दगा या फरेब नहीं करता अलबता कर्ज मुझ पर है जो मैं चुका नहीं पाता। फिर भी कमाई की एक रकम कर्ज में ही जाती है। इस पर भी मैं सोचता हूँ कि बुनियादी तौर से बेईमान हूँ। इसलिए अपने को उठाईगीर कहा। 'पूँजीवादी व्यवस्था समाज को मुक्त नही करती है। दिनों दिन उसे गुलामी की जंजीर में फंसाकर मानव की मुक्ति में बाधक रहती है और मानवीय मूल्यों को हमेशा के लिए हाशियेकृत कर देती है। बडे बडे कलाकार, राजनीतिज्ञ, कवि, लेखक कोई भी इससे मुक्त नहीं है। पेट और प्रवृत्ति का समन्वय करने वाला एक समझौता परस्त मनुष्य व्यक्ति में बदल जाता है। यही स्थिति जनाना जिस्म के आदमी के चरित्र में देख सकते हैं जो कि पेशे से सी.आई.डी. है। समाज को कमजोर करने वाली शक्तियों के खिलाफ कहानीकार ने जोर से आवाज़ उठायी है।

12.5 फैंटसी और मुक्तिबोध की कहानी

फैंटसीनुमा शैली नई कहानी की शक्ति थी। कहानी को अधिक से अधिक प्रभावी एवं संवेदनशील बनाने के लिए नई कहानी ने फैंटसी को एक उपकरण के रूप में स्वीकार किया है। युगीन सच्चाई को अभिव्यक्त करने के लिए जिन नए औजारों को आत्मसात करना था उन्हें सहजता से स्वीकार करने से कहानी की संप्रेषणीयता प्रखर हो गई है। छायावाद की काल्पनिकता से मुक्त, मानवीय मूल्यों से संपृक्त एक अलग शैली के रूप में मुक्तिबोध ने फैंटसी को अपनाया है। उनकी फैंटसी कहानी के कलेवर में बिलकुल खरी उतरती थी। अयथार्थ की कोई झलक उनकी कहानी में नहीं मिलती है। भयानक तथा फैंटसी युक्त वातावरण में कहानी को रोचक बनाकर पाठक को कहानी के साथ चलने के लिए उन्होंने प्रेरित किया है।

कथावाचक को उस अजनबी साथी के जनानेपन से कोई ईश्वरीय अर्थ दिखायी दिया। लेखक को उसके बयान से लगता है कि वह सचमुच इस दुनिया में नहीं रही है, उससे

कोई दो सौ मील पर आ गया है, यहाँ आकाश, चाँद-तारे, सूरज अभी दिखाई देते हैं। रॉकेट उड रहे हैं, आते हैं, जाते हैं, और पृथ्वी एक चौड़े नीले गोले जगत-सी दिखाई दे रही है। जहाँ हम किसी एक देश के नही है। सभी देश के है, मन में एक भयानक उद्धेग पूर्ण भारहीन चलता है। कुल मिला कर पल भर यही हालत रही। उसी पल से अभिभूत होकर लेखक ने उस अद्भुत व्यक्ति से पूछा वही हिरोशिमा वाला क्लॉड ईथरली इस पागलखाना में है।

अमरीकी रोमन कॉथोलिक ईसाई आदिवासी क्लॉड ईथरली जिसने कि जापान के हिरोशिमा में एटम बम गिराया था। और अब वह हिन्दुस्तान के पागलखाने में कैद है। वह पागलखाना विक्टोरियन स्थापत्य कला में बनायी गयी पत्थरों की बिल्डिंग है, जो कि बहुत दूर से दिखाई देता है, उसमें कैद क्लॉड ईथरली का वर्णन करने वाली मुक्तिबोध की फैंटसी अनुवाचक के मन में धंस जाती है। इस में किसी भी प्रकार की अस्वाभिकता या कृत्रिमता नहीं है। वह कहानी को अधिक से अधिक रोचक बना देता है। बडे से पेड के नीचे पान की एक दुकान और उस दुकान के आईने में दिखने वाला चित्र देखने पर कथावाचक को संन्देह होता है कि अब हम अमरीका में है या हिन्दुस्तान में। इन संकेतों और चिह्नों के माध्यम से कहानीकार ने कहानी को अत्यन्त नाटकीय एवं रोचक बना दिया है।

प्रतीकों का सुनियोचित प्रयोग नई कहानी की सबसे बडी विशेषता थी और वह कहानी की अभिव्यक्ति में सहायक सिद्ध होती थी। कहानी के सन्दर्भों तथा अनुभवों से सामंजस्य स्थापित करके उसकी समग्रता को गुंफित करने में प्रतीकों की सक्रिय भागीदारी होती है। इतिहास बोध के जटिल तथा संश्लिष्ट कथा शिल्प को सामाजिक यथार्थ और कलात्मक बारीकियों के साथ अभिव्यंजित करके पाठकों के मन में प्रतिष्ठित करने में प्रतीकों का अपना योगदान है। खुद कहानीकार ने कहा कि क्लॉड ईथरली अणुयुद्ध का विरोध करनेवाली आत्मा की आवाज का दूसरा नाम है। आध्यात्मिक उद्विग्नता और आध्यात्मिक अशान्ति का वह ज्वलंत प्रतीक है। अफसोस की बात है कि इस आध्यात्मिक उद्विग्नता और आध्यात्मिक अशान्ति को समझने वाले लोगों की संख्या बहुत कम है। पुराने जमाने में ऐसे बहुत से संतों को पागल कहकर पागलखाने में डाल दिया गया। आत्मा की आवाज को समझने वाले लोगों को जनाना जिस्म के आदमी ने कभी पागल कहा, कभी बेवकूफ, कभी लेखक या कवि कहा और कभी वह समाज विरोधी तत्वों के प्रतिनिधि के प्रतीक रूप में दर्शाया- 'जो आदमी आत्मा की आवाज कभी कभी सुन लिया करता है, और उसे बयान करके उससे छुट्टी पा लेता है, वह लेखक हो जाता है। आत्मा की आवाज जो लगातार सुन लेता है और वह कहता कुछ नहीं है, वह भोला-भाला, सीधा-सादा बेवकूफ है। जो उसकी आवाज बहुत ज्यादा सुना करता है और वैसा करने लगता है। वह समाज विरोधी तत्वों में यो ही शामिल हो जाया करता है। लेकिन जो आदमी आत्मा की आवाज जरूरत से ज्यादा सुन करके हमेशा बेचैन रहा करता है और उस बेचैनी में भीतर के हुक्म का पालन करता है, वह निहायत पागल है, पुराने जमाने में ऐसे लोग सन्त हो सकते थे। आजकल उन्हें पागलखाने में डाल दिया जाता है। कहानीकार ने शोषितों, उत्पीडितों के साथ शोषकों को भी प्रतीकात्मक ढंग से उभारा है। शोषकों को उन्होंने डाकू घोषित किया है। 'बहुतेरे लोग है, जो पापाचार रूपी, शोषण रूपी डाकुओं को अपनी छाती पर बैठा समझते है। वह डाकू केवल बाहर का व्यक्ति नही, वह उनके घर का व्यक्ति भी है।

12.6 मुक्तिबोध के पात्र और सामाजिक मूल्य

मुक्तिबोध के पात्र सामाजिक मूल्यों का अन्वेषण करने वाले संवेदनशील पात्र है, समाज सापेक्षता से युक्त पात्रों का चयन आपकी एक खासियत के रूप में स्वीकारा गया है। मानवीय मूल्यों से प्रेरित चरित्रों का सृजन करने में आपकी क्षमता अद्वितीय है। इस कहानी में आपने तीन प्रमुख पात्रों का चित्रण किया है। पागलखाने में कैद दो पीली स्फटिक सी तेज आँखों वाला शख्स, लंबी सलवटों से भरा तंग मोतिया चेहरे वाला वह आदमी जिसे कथा वाचक ने रोशनदान में से देखा था और उसके चेहरे से भला आदमी मालूम होता है। निस्सदेह वह क्लॉड ईथरली ही है। वह अणुयुद्ध के विरोध करने वाली आत्मा का प्रतीक है। बम गिरने से तहस नहस हुए हिरोशिमा का पुनःनिर्माण करने वाले मेयर को वह हर माह चेक भेज देता है, जिससे कि उन पैसों से दीन हीनों की सहायता तो पहुँचे ही। उसने जो भयानक पाप किया वह भी कम हो।

जनाना जिस्म का आदमी जो कि पेशे से सी.आई.डी. है वह एक करोडपति सेठ का नाजायज लड़का है। जो कि अपनी माँ के कहने से बमुश्किल मेट्रिक पास किया और पेट तथा प्रवृत्ति का समन्वय करने वाला समझौतावादी का प्रतीक है, फिर भी उनकी बातों से लगता है कि वह पहुँचा हुआ आदमी है। कथावाचक को लगता है कि वह किसी फैन्टसी में रहा है। वह कोई गुप्तचर नहीं है, वह खुद पागल होगा या कोई पहुँचा हुआ आदमी। लेकिन वह पागल भी नही, कोई पहुँचा हुआ आदमी भी नहीं, वह सिर्फ जनाना आदमी है। वैज्ञानिक शब्दावली में कहें तो जवान पट्टा, लगता है कि वह अज्ञात सांइन्स के गणितिक सूत्र की अंकराशी हो, जिसका मतलब तो कुछ जरूर होता है, लेकिन समझ में नही आता है।

तीसरा पात्र है कथावाचक जो कि सुशिक्षित, सुसंस्कृत तथा ईमानदार आदमी है। पेशे से वह एक सचेत, जागरूक और संवेदनशील लेखक होने के नाते सामाजिक मूल्यों के प्रति हमेशा जाग्रत रहता है और उसने शोषितों की ओर मुखातिब होने को अपना जीवन लक्ष्य स्वीकारा है, वह झूठ नही बोलता है, ईमानदारी की जिन्दगी जीता है फिर भी बेईमान है, अतः अपने को उठाईगीरा कहता है। हिन्दुस्तान को अमरीका होना उसे स्वीकार नही और वह उनकी समझ के बाहर आदर्श पात्र के रूप में बनाया है।

मध्यवर्गीय पात्र को शोषक तथा भद्र वर्ग से जुडे होकर भी अपनी भद्रता के निर्वाह के लिए आर्थिक कष्ठ उठाना पड़ता है। मध्यवर्ग के द्विमुही मानसिकता को कहानीकार ने कथावाचक के पात्र के माध्यम से स्पष्ट किया है। 'जरूर मुझमें ऐसा कुछ है कि जिसे मैं विशेष योग्यता कह सकता हूँ। मैंने अपने जीवन में जो शिक्षा और अशिक्षा प्राप्त की, स्कूलो-कॉलेजों में जो विद्या और अविद्या उपलब्ध की जो कौशल और अकौशल प्राप्त किया, उसने मुझे- मैं मानूँ या न मानूँ- भद्र वर्ग का ही अंग बना दिया है इस मध्यवर्गीय मानसिकता से ग्रस्त कथावाचक को प्रस्तुत करके कहानीकार ने मध्यवर्ग के द्वंन्द्व को व्यक्त किया है।

12.7 सारांश

'क्लॉड ईथरली' पूँजीवादी व्यवस्था का एक औजार मात्र है, जिस व्यवस्था से वह जुड़ गया है उस की आज्ञा का पालन करने के लिए वह बाध्य है। साम्राज्यवादी व्यवस्था ने उन्हें वार हीरो बना दिया है। लेकिन उस व्यवस्था के द्वारा दी गयी वार हीरो की उपाधि त्याग कर वह जेल जाना चाहता है। वह अपनी अन्तरात्मा की आवाज सुनने पर पश्चाताप के कारण, जेल की सजा को स्वीकारना वह वार हीरो की उपाधि से भी श्रेष्ठ

मानता है। इतने बडे टैटिल के अधिकारी को वारदातों के नाम पर कैद में डालना उस टैटिल के खिलाफ किया जाने वाला अन्याय होगा। इसलिए हर बार वह छोड़ दिया जाता है। अंत में दुरुस्त ठीक करने के लिए पागल खाने में कैद कर देता है 'भारत के हर बडे नगर में एक एक अमरीका है'- यह बहुराष्ट्रीय कंपनियों की बाजारू पूँजी की ओर संकेत है। 'बडे से पेड के नीचे की पान की दूकान, और दूकान में लगा हुआ आइना, धुँधली लहरें, पीछे के मसाले के दोष आदि दो संस्कृतियों के बीच के संघर्ष को सूचित करने में सक्षम है।

भाषा की जीवन्तता एवं प्रवाहमयता कहानी को सजग तथा रोचक बना देती है। अंग्रेजी शब्दों और शैली का प्रयोग कहानी के कलेवर के अनुकूल है। फैंटसी युक्त शैली कहानी की गरिमा को बढ़ाती है। मुक्तिबोध की भाषा में कोमलकान्त पदावली के शब्दों का प्रयोग नहीं मिलेगा, क्योंकि समाज की कठिन सच्चाई को व्यक्त करने के लिए खुरदरे शब्दों का प्रयोग करना जरूरी है। अपने जीवन में भोगी पीडाओं को व्यक्त करने योग्य पदावली को उन्होंने स्वीकारा है। नई कहानी के कहानीकारों में मुक्तिबोध की भाषा अन्य कहानीकारों से इसीलिए भिन्न है कि उन्होंने अपने भोगे हुए अनुभव को ही कहानी का विषय बनाया है।

उपनिवेशवादी संस्कृति ने पूरे विश्व को एक मण्डी में बदल दिया है। नव उपनिवेशवादी संस्कृति के षड़यन्त्रों से सजग रहना समय की माँग है। एक ओर औपनिवेशिक दासता ने भारत को पीछे की ओर धकेला है तो दूसरी ओर मध्यवर्ग के कुछ गिने चुने लोगों तथा उच्च वर्ग को आधुनिक शिक्षा, टेकनॉलॉजी और औद्यगीकरण के रूप में सुविधायें तो जरूर मिली है। इस सन्दर्भ में मुक्तिबोध ने नीर-क्षीर विवेक के महत्व प्रस्तुत कहानी में बल दिया है।

12.8 अभ्यास

1. 'नई कहानी' आन्दोलन में मुक्तिबोध का स्थान निर्धारित कीजिए।
2. मुक्तिबोध की कहानी 'क्लॉड ईथरली' में चित्रित अणुयुद्ध की भीषणता पर प्रकाश डालिए।
3. वार हीरो की उपाधि मिलने पर क्लॉड ईथरली क्यों दुखित हो जाता है?
4. मुक्तिबोध की 'क्लॉड ईथरली' कहानी में चित्रित फैंटसी पर विचार कीजिए।
5. 'क्लॉड ईथरली' के पात्रों के सामाजिक बोध को स्पष्ट कीजिए।

12.8 खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें

समकालीन कहानी : दिशा और दृष्टि, संपा॰ धनंजय, अभिव्यक्ति प्रकाशन, यूनि॰ गेट, इलाहाबाद।

समकालीन कहानी की पहचान,नरेन्द्र मोहन, प्रवीण प्रकाशन, महरौली, नई दिल्ली।

समकालीन कहानी : समान्तर कहानी, डॉ॰ विनय, मैकमिलन एंड कंपनी, नयी दिल्ली।

समकालीन कहानी : रचना-मुद्रा, पुष्पपाल सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।

समकालीन कहानी : नया परिप्रेक्ष्य, पुष्पपाल सिंह, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली।